प्रकाशक—
कृष्णलाल वर्मा.
प्रोप्राइटर, ग्रंथभंडार, लेडी हार्डिंजरोड,
माटूंगा, बंबई.
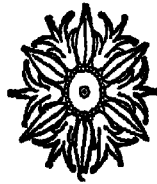
रा. चिंतामण सखाराम देवळेद्वारा मुंबईवैभव प्रेस, सँडहर्स्ट रोड, सर्वेंट्स् ऑफ इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग्ज्, गिरगांव, मुंबईमें पूर्वार्द्ध पेज ४९ से ५२० तक और उत्तरार्द्ध पेज ११३ से पेज २४० तक मुद्रित और
ठक्कर अंबालाल विठ्ठलदासद्वारा लुहाणामित्र प्रेस, शियापुर बडोदेमें पूर्वार्द्ध पेज १ से ४८ तक और उत्तरार्द्ध पेज १ से ११२ तक मुद्रित.

श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा की लिखित पुस्तकें।

स्वलिखित।

1. १ आदर्श जीवन
2. २ पुनरुत्थान
3. ३ चंपा (अप्राप्य)
4. ४ दलजीतसिंह ,,
5. ५ स्त्रीरत्न ,,
6. ६ बालविवाहका हृदयद्रावक दृश्य (अप्राप्य)
7. ७ धर्म प्रचार (अप्राप्य)
8. ८ सुर सुंदरी
9. ९ वीर हनुमान
10. १० सच्चा बलिदान
11. ११ तीर्थंकरचरित्रभूमिका
12. १२ आदिनाथ चरित्र
13. १३ अजितनाथचरित्र
14. १४ रमाकान्त (अप्रकाशित)
15. ५ बूढ़ेबाबाका ब्याह (अप्राप्य)
16. . मनोरमा (,,)
17. १७ हिन्दी प्रवेश
18. १८ महासती सीता
19. १९ सती दमयन्ती
20. २० अनन्तमती

अनुवादित।

1. १ सूरीश्वर और सम्राट् अकबर
2. २ जैनरामायण
3. ३ अपूर्व आत्मत्याग
4. ४ गृहिणी गौरव
5. ५ सर्वोदय
6. ६ स्वदेशी धर्म
7. ७ गाँधीजीका बयान
8. ८ तीन रत्न
9. ९ पंचरत्न
10. १० राजपथका पथिक
11. ११ दरिद्रतासे बचनेका उपाय
12. १२ सामायिक रहस्य (अप्रकाशित)
13. १३ धर्मदेशना (,,)
14. १४ अकबरके दर्बारमें हीरविजय सूरि
15. १५ पैंतीस बोल
16. १६ पन्द्रहलाखपरपानी
17. १७ भावनाबोध (अप्रकाशित)
18. १८ जैनदर्शन (अप्राप्य)

समर्पण ।

स्वर्गीय युगप्रधान, आचार्य महाराज १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरिजीके पादपद्मोंमें,

पूज्यवर्य,

जिस आत्माको आपने पदाश्रय देकर उन्नत बनाया, जिस आत्माको योग्य समझ कर आपने अपने लगाये हुए बागीचेका माली नियत किया, जिस आत्माको आपने अपना असीम प्रेम देकर प्रेममूर्ति बनाया, जिस आत्माकी वाणीमें, आपने अपना वाक्चातुर्य देकर, जादूका असर पैदा किया, जिस आत्माको आपने अपने अथाग परिश्रम द्वारा प्राप्त किये हुए ज्ञानका कवच पहनाकर अजेय कर दिया,

उसी आपके अनन्य भक्त, आपके नामपर प्राण न्योछावर करने की हौंस रखनेवाले, आपकी सरस्वती मंदिर बनानेकी अधूरी रही हुई इच्छाको पूर्ण करनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनेवाले, समस्त भारतमें आपके नामका डंका बजानेवाले, आपहीके समान जीवनभर ब्रह्मचर्य पालकर जप तप संयमसे रहनेवाले,

महान् नरकी जीवन–घटनाओंका संग्रह आपके पादपद्मोंमें अर्पण करता हूँ ।

चरण–चंचरीक

कृष्णलाल वर्मा.

१००८ न्यायाम्भोनिधितपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि ऊर्फ
श्रीआत्मारामजी महाराज.
जन्म सं. १८९३ अवसान संवत् १९५३

प्राक्कथन ।

हों सन्त जिस पथके पथिक, पावन परम वह पंथ है।
आचरण ही उनका जगत्‌में पथ-प्रदर्शक ग्रंथ है॥

जो जमानेकी आवश्यकताको समझकर, लोकोपकार करते हैं; लोगोंकी भलाईमें ही अपना जीवन बिताते है; जीवनका प्रत्येक श्वासोश्वास जिनका परोपकारके लिए होता है; प्रत्येक विचार जिनका दूसरोंको लाभ—आत्मलाभ—पहुँचानेके लिए होता है; जिनका जीवन सदा सत्यमय होता है; इन्द्रिय संयमका जो आचरणीय पाठ पढ़ाते है; रागद्वेषकी परिणति दूर हो और वीतरागभाव फैलें इसी उद्देश्यसे जो जीवनकी प्रत्येक क्रिया करते हैं; वे महात्मा धन्य है, उनका जीवन सफल है और उन्हींका जीवन आदर्श जीवन है । ऐसे आदर्शजीवनसे जो शिक्षा मिलती है और हमारे जीवनमें जो परिवर्तन हो जाते हैं; वे सैकड़ों, हजारों उपदेशोंसे भी नहीं होते । इसी लिए भक्त तुलसीदासजी कह गये है—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधीमें भी आध ।
तुलसी संगति साधुकी, कटे कोटि अपराध

यदि प्रत्यक्ष साधु—महात्माकी संगति नहीं मिले तो उनकी जीवन-कथा भी हमें अनेक अपराधोंसे छुड़ा सकती है ।

आज पाठकोंके हाथोंमें, ऐसे ही एक आदर्शजीवनको देते हमें बड़ी प्रसन्नता होती है । आशा है पाठक इस जीवनसे स्वयं लाभ उठायँगे और अपने इष्ट मित्रोंको भी उठानेका अवसर देंगे ।

गये चौमासेमें अर्थात् सं० १९८१ के चौमासेमें १०८ पंन्यासजी महाराज श्रीललितविजयजी गणीने १००८

श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयवल्लभ सूरिजीका एक छोटा-सा जीवनचरित्र लिख देनेके लिए कहा। कारण जोधपुरसे निकलनेवाले 'ओसवाल' पत्रके संपादकने, कई बार पंन्यासजी महाराजसे आचार्यश्रीका चरित्र "ओसवाल" पत्रमें प्रकाशित करानेके लिए लिखकर भेजनेकी, विनती की थी। पंन्यासजी महाराज इतने मीठे बोलनेवाले हैं और लोगोंके दिलोंको इतने अच्छे ढंगसे अपने कब्जेमें कर लेनेवाले हैं कि, मै उसको बता नहीं सकता। मेरी इच्छा न होते हुए भी यंत्रचालित फोनोग्राफकी भाँति मैं बोल उठाः—"आप मुझे चरित्र सुनाइए, मैं लिख दूँगा।"

आचार्यश्रीका चरित्र वैसे ही उत्तम है उस पर पंन्यासजी महाराजकी, वर्णन करनेकी शैली इतनी सुंदर थी कि मेरे हृदयमें अनिच्छाकी जगह श्रद्धा उत्पन्न हो गई। जिस समय मैंने यह सुना कि, आपने कैसे मिलके चरबीवाले वस्त्रोंका, अधर्म समझ कर, त्याग किया, कैसे हजारों लाखों कीड़ोंके संहारसे बनते हुए रेशमके कपड़ोंके व्यवहारको बंद करनेका उपदेश दिया, उपदेश ही नहीं उनका व्यवहार श्रावकोंसे बंद कराया, कैसे आपने गोरवाडकी शिक्षाविहीन-विकट भूमिमें, विहार कर अनेक तरहके कष्ट सह, लोगोंके दिलोंमें शिक्षाप्रचार का बीज बोया, शिक्षाप्रचारके लिए लोगोंसे लाखों रुपये इकट्ठे करवाये, कैसे आपने अनेक स्थानोंमें श्रावकोंके आपसी विवाद मिटाये, कैसे आपने जमानेके अनुसार पश्चिमी सभ्यतामें बहकर धर्मसे विमुख बनते हुए युवकोंको धर्ममें स्थिर रखनेके लिए संस्थाएँ स्थापित कराई आदि; तब मेरे हृदयमें भक्तिभाव उत्पन्न हो गये। मैंने छोटासा चरित्र लिख देनेकी बात छोड़ दी और एक बृहद् चरित्र लिखकर प्रकाशित करानेका विचार कर लिया।

उसी समयसे मैं सम्पूर्ण चरित्र लिखनेके लिए सामग्री इकंट्ठी करनेमें लगा। कारण पंन्यासजी महाराजको भी पूर्ण चरित्र मालूम नहीं था, तो भी मै यह कहे विना नहीं रह सकता कि, चरित्र लिखनेके लिए सामग्री जुटा देनेकी सहायता पूर्ण रूपसे पंन्यासजी महाराज ललितविजयजीने ही दी है। इस लिए मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ। १०८ उपाध्यायजी महाराज श्रीसोहनविजयजीसे प्रार्थना करने पर उन्होंने स्वतंत्र रूपसे, जितना हाल उन्हें मालूम था, उतना लिख भेजनेका कष्ट उठाया इस लिए उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। १०८ पंन्यासजी महाराज श्रीउमंगविजयजी गणी, मुनिश्री प्रभाविजयजी महाराज, मुनि श्रीचरणविजयजी महाराज, और होशियारपुरके लाला नानकचंदजीका भी उपकार मानता हूँ कि जिनके द्वारा मुझे अनेक बातें मालूम हुई है। 'आत्मानंद जैनपत्रिका' लाहोर (हिन्दी) और 'श्रीआत्मानंद-प्रकाश' भावनगर (गुजराती) के संपादकोंका भी उपकार मानता हूँ। क्योंकि पुराने बहुतसे हालात इन्हीं पत्रोंकी पुरानी फाइलोंसे मुझे मालूम हुए हैं। इनके अलावा उन सज्जनोंका भी उपकार मानता हूँ जिनसे कुछ बातें मालूम हुई हैं; परन्तु जिनके नाम मुझे याद नहीं रहे हैं।

इसमें एक दो घटनाएँ ऐसी छोड़ दी गई है, जो यद्यपि आपके चरित्रको महिमान्वित करने वाली थीं, किन्तु दूसरोंके हृदयोंमें दुःख पहुँचाने वाली थीं। मैने लिखते समय इस बातका खास ध्यान रक्खा है कि, कोई ऐसी बात न लिखी जाय जिससे किसीका मन दुखे; तो भी छद्मस्थावस्थाके कारण किसीको किसी बातसे दुःख पहुँचे तो

उसके लिए ' मिच्छामि दुक्कड ' देता हूँ। किसीका मन दुखानेका इरादा बिल्कुल ही नहीं है।

इसमें 'आप' शब्दका प्रयोग सिर्फ इस चरित्रके नायकके लिए ही किया गया है औरोंके लिए नहीं। इससे किसीको यह खयाल न करना चाहिए कि, दूसरोंके लिए 'आप' शब्द न लिखकर उनका अपमान किया गया है। अनेकोंके लिए 'आप' शब्दका उपयोग करनेसे समझनेमें गड़बड़ी होनेकी संभावना थी।

चरित्र स्वतंत्र रूपसे लिखा और प्रकाशित कराया जा रहा है। इसमें किसीसे किसी तरहकी आर्थिक सहायता धर्मके या गुरुभक्तिके नामसे नहीं ली गई है। हाँ पहलेसे ग्राहक बनानेका प्रयत्न अवश्य मेव किया गया है। और जिन सज्जनोंने पहलेसे ग्राहक होकर मुझे उत्साहित किया है उनका उपकार मानता हूँ। महावीर जैन-विद्यालयके संचालकोंसे पाँच ब्लॉक छापनेके लिए मिले इस लिए उनका भी उपकार मानता हूँ।

अनेक परिस्थितियोंके कारण चरित्रको मैं जिस रूपमें पाठकोंके सामने रखना चाहता था उस रूपमें न रख सका, इसका मुझे खेद है; मगर जिस रूपमें पाठकोंके सामने आ रहा है वह भी उत्तम है और भक्तोंकी मनस्तुष्टिके लिए सम्पूर्ण है। पूजा और पदवीप्रधानका वर्णन लाहोरवालोंका प्रकाशित ही हूबहू दे दिया है भाषाभाव सभी उसीमेंके हैं।

इस चरित्रमें केवल लाहोरके चौमासे तकका ही वर्णन है। आगेकी बातें फिर कभी पाठकोंको भेट की जायँगी।

भूलचूकके लिए क्षमा प्रार्थी, जैनत्वका सेवक—

कृष्णलाल वर्मा।

☞ बहुत प्रयत्न करनेपर भी हमें चरित्रनायकका दीक्षामें पहलेवाला और अजमेरवाला फोटो न मिल सका, पाठक क्षमा करें ।

—प्रकाशक

हमारे चरित्रनायक.

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४

आदर्श-जीवन

प्रथम खंड।

(सं. १९२७ से सं. १९४४ तक)

बड़ोदेके जानीसेरीका उपाश्रय नरनारियोंसे भराहुआ थ महात्माकी जलद गंभीर वाणीका श्रवण करनेके लिए लोग आगे बैठनेका प्रयत्न करनेमें एक दूसरेको धकेल रहे थे। इस धकापेलमें लोगोंकी उपदेशामृतकी बहुत ही थोड़ी बूँदें पान करनेको मिल रही थीं। ऐसे समयमें भी एक दीवारके सहारे एक १५ वर्षीय बालक एकाग्रचित्तसे उस अमृत वाणीका पान कर रहा था। उसकी आँखें महात्माके भव्य तेजोदीप्त मुख मंडल पर स्थिर थीं और उसके कान अस्खलित भावसे उस अमृतको पीकर अपने अन्तस्थलमें पहुँचा रहे थे और वहाँसे अनन्त जीवनके बद्ध कर्म मलको, उस अमृतद्वारा ढीलाकर, बाहर फैंक देनेका यत्न कर रहे थे।

व्याख्यान समाप्त हुआ। श्रोता लोग महात्माको वंदना कर, एक एक करके अपने घर चले गये, मगर वह बालक उसी तरह स्थिर बैठा रहा।

महात्माने पूछा:—"बालक क्यों बैठे हो?"

बालक चौंक पड़ा। उसके सुख स्वप्नकी सुंदर मूर्तिके निर्माणमें बाधा पड़ गई। उसके नेत्रोंमें जल भर आया। उससे उठा न गया। वह करुणा पूर्ण दृष्टिसे महात्माकी ओर देखता रह गया। उस दृष्टिने महात्माके हृदय पर गहरा असर किया। वे उठे; बालकके पास गये और पितृप्रेमसे उसके मस्तक पर हाथ रखकर बोले:–" वत्स ! इस तरह क्यों बैठा है ? उठ ! "

बालकने महात्माके दोनों पैर पकड़ लिए। उसकी आँखोंसे जलधारा बह चली। जुबानसे शब्द न निकले। दोनों पैर वाष्पोष्ण वारिसे परिप्लावित हो गये।

महात्मा बालकको उठानेका प्रयत्न करते हुए स्नेह गद्गद कण्ठसे बोले:–" भद्र ! क्या दुख है ? धन चाहता है ? "

बालक पैर छोड़ उठ खड़ा हुआ और आँखें पोंछते हुए बोला:–" हाँ "

महात्मा:–" कितना "

बालक:–" गिन्ती मैं नहीं बता सकता। "

म०–" अच्छा किसीको आने दे। "

बा०–" नहीं मैं आपहीसे लेना चाहता हूँ। "

म०–" हम पैसा टका नहीं रखते। "

बा०–" मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है। वह तो विनश्वर है। "

महात्माने कुतूहलके साथ पूछाः—" तब कौनसा धन चाहता है ? "

बालक,—" वह धन जिससे अनन्त सुख मिले । "

महात्माको बालकके बुद्धिकौशल पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने ध्यानसे बालकके चहरेकी ओर देखा। ललाट पर भावी जीवनकी उज्ज्वल रेखाएँ दिखाई दीं। उन्होंने देखा,—इस महान आत्माद्वारा समाजका कल्याण होगा; इसके द्वारा धर्मका उद्योत होगा; इसके द्वारा शासनकी प्रभावना होगी। महात्मा बोले,—" वत्स ! योग्य समय पर तेरी मनोकामना पूरी होगी। "

बालकका मुखकमल आनंदसे खिल उठा । भक्तिपूर्ण हृदयसे महात्माको नमस्कार कर वह धीरे धीरे चला गया।

× × × ×

हमारे इस चरित्रके नायक ही यह बालक था और महात्मा थे जगत्पूज्य श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरिजी महाराज।

हमारे चरित्र नायकका जन्म बड़ोदेमें, सं० १९२७ के कार्तिक सुदी २ (भाईदूज) के दिन, हुआ था। आपका गृस्थावस्थामें नाम छगनलाल था। आपके चार भाई थे। सबसे बड़े हीराचंद, दूसरे खीमचंद तीसरे आप (छगनलाल) और सबसे छोटा मगनलाल। आपके तीन बहिनें थीं। उनके नाम

थे महालक्ष्मी, जमुना और रुक्मणी; पिताका नाम श्रीयुत दीपचंदभाई था और उनका देहान्त आप जब छोटी उम्रमें थे तभी हो गया था । आपकी माता श्रीमती इच्छाबाई आपसे बहुत ही ज्यादा स्नेह रखती थीं । धर्मात्मा भी अपने शहरमें अद्वितीय थीं । अपनी धर्मभावनाओंका सारा खज़ाना वे अपने स्नेहभाजन इसी पुत्रको दे गईं थी ।

इच्छाबाईका अन्त समय निकट था । मनुष्य--आयुरूपी कर्म--रज्जूका एक एक तार वेगपूर्वक प्रत्येक श्वासोश्वासके साथ टूटता जा रहा था । धर्मात्मा देवी बड़ी कठिनताके साथ शब्दोच्चार कर सकती थीं । जिस समय उनके मुँहसे शब्द निकलता ' अर्हंत ' । प्यारी सन्तान सामने विलखकर रो रही थी । स्वजन सम्बंधी व्याकुलतासे देवीकी ओर देख रहे थे । देवी सबको हाथ उठाकर अपनी अन्तिम अवस्थामें भी आश्वासन दे रही थीं और मुखसे अर्हंत शब्दका उच्चारण कर रही थी । इस शब्दोच्चार और स्वाभाविक शान्तिसे जो आश्वासन मिलता था वह संभवतः अनेक व्याख्यानों और उपदेशोंसे भी नहीं मिल सकता था ।

देवी थोड़ी देर हमारे चरित्रनायककी ओर स्थिर दृष्टिसे देखती रहीं और बोलीं,--" छगन ! तू भी इतना दुर्बल ? "

आप अबतक धीरे धीरे आँसू बहा रहे थे अब अपने आपको न सम्भाल सके उच्च स्वरमें करुणक्रंदन करने लगे । कुछ

शान्त होने पर उसके भाई बोले,—" माँ ! हमें किसके भरोसे छोड़ जाती हो ? "

माँके हृदयमें मोहकी एक आँधी उठी । सन्तान-स्नेहके तूफानमें धार्मिक ज्ञानके कारण शान्त बना हुआ चित्त क्षुब्ध हो उठा । प्रसन्नतापूर्ण चहरे पर म्लानता दिखाई दी । आँखोंमें पानी भर आया । एक दीर्घ निःश्वास डालकर बोलीः—"अर्हंत !"

इस निःश्वासके साथ ही मानों सारी क्षुब्धता निकल गई । चहरेपर फिरसे प्रसन्नता दिखाई दी । वे बोलीं:—" छगन ! "

इस शब्दने हमारे चरित्र नायकको सजग किया । बचपनसे माता संसारकी असारताके जो उपदेश दिया करती थीं वे एक एक करके आपकी आँखोंके सामने खड़े होने लगे । अविनाशी आत्माकी भावना, विनाशी पुद्गल धर्मके विचार, कर्मोदयके कारण होनेवाला संसारके परिवर्तनका खयाल सभी आपको स्थिर करने लगे । आपने माताके संबोधनका अर्थ समझा, आँखें पोंछ डालीं और पूछाः—" माँ क्या आज्ञा है ? "

माता स्नेहगद्गद स्वरमें बोलीः—" बेटा ! अविनाशी सुख-धाममें पहुँचानेवाले धनको प्राप्त करने और जगत्का कल्याण करनेमें अपना जीवन बिताना । "

माताने एक निःश्वास छोड़ी; अर्हंत शब्दका उच्चारण किया और उसके साथ ही उनका जीवनहंस भी उड़ गया ।

× × × ×

उसी समयसे आप माताकी आज्ञाका पालन कैसे हो इसकी चिन्तामें रहते थे। आपमें सामान्य बालकोंसा न खिलाड़ीपन था न उधम। एक गंभीर शान्तिसे आप अपने दिन निकालते थे। आपकी इस गंभीरताको देखकर लोग आपके विषयमें तरह तरहके अनुमान बाँधा करते थे।

सं० १९४० की बात है। श्रीआत्मारामजी महाराजके सिंघाड़ेके साधु मुनिराज श्रीचंद्रविजयजी महाराजका चौमासा, बड़ोदेमें, पीपलासेरीके दर्वाजे पर हुआ था। हमारे चरित्रनायकका घर भी पीपलासेरीहीमें था। इसलिए आप प्रायः चंद्रविजयजी महाराजके पास आया जाया करते थे। पूर्वजन्मके सुकृत, माताके जीवनव्यापी धर्मोपदेश और साधु महाराजकी संगति तीनोंने मिलकर आपके मनको संसारसे उदास किया; आपके हृदयमें दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। दूसरे चार साथियोंने आपके साथ ही दीक्षित होनेका विचार प्रदर्शित कर इस इच्छाको कार्यके रूपमें परिणत करनेके लिए आपको दृढ बना दिया।

वे चार साथी थे,—हरिलाल, साँकलचंद खूबचंद खंभाती, वाडीलाल लालभाई गाँधी और मगनलाल मास्तर। मगनलाल अंग्रेजीका अध्ययन करते थे और अनेक प्रकारकी सांसारिक उच्च आशाएँ रखते थे; उन्हें उनसे छूटना था। वाडीलाल विवाहित थे और उन्हें पत्नीके मोह-पिंजरेसे निकल भागना था; हरिलाल जौहरी हीराचंद ईश्वरदासके यहाँ रहते थे; लोग उनको 'सूबा'

कहकर पुकारते थे। उनके एक वृद्ध माता थी। उसका आधार वेही थे। उन्हें वृद्ध माताको त्याग करना पड़ता था। तीनोंके हृदयोंमें द्वंद्व मचा हुआ था; वैराग्य और बंधनमें युद्ध हो रहा था, मगर बाहर वे पक्का वैराग्य ही दिखाते थे।

पाँचोंने मिलकर एक दिन घरसे निकलजाना निश्चित किया। तारीख और समय मुकर्रर हुए। हरिलालके वैराग्यने सबसे पहले हार खाई। उसने किसीके द्वारा पाँचोंके अभिभावकोंको खबर दे दी। उनकी सलाहें निष्फल गईं। उनके संरक्षकोंने उन्हें कहीं जाने न दिया। कुछ समयके बाद श्रीचंद्रविजयजी महाराजका भी स्वर्ग-वास हो गया। इसलिए सबके वैराग्य शान्त हो गये। सभीने फिरसे विद्याध्ययनमें चित्त लगाया।

आपने भी छठी क्लासका इम्तहान दिया और सफलता पाई। जब आप सातवीं क्लासमें पढ़ते थे परीक्षाका समय पास था, तब वि० सं० १९४२ था। उसी साल स्वर्गीय १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजका बड़ोदेमें आगमन हुआ। आपकी सोईहुई भावना फिर जागृत हुई और एक दिन जो घटना हुई उसका वर्णन हमने पुस्तकके आरंभहीमें दे दिया है।

एक महीने तक महाराज साहबका यहाँ विराजना हुआ। फिर विहार करके छाणी पधारे। अनेक श्रावक छाणी तक गये। आप भी अपने बड़े भाई खीमचंद्रजीके साथ छाणी गये। आपकी ईच्छा वापिस बड़ोदे आनेकी न थी। मगर भाईके डरके मारे

कुछ बोल न सके । चुपचाप भाईके साथ ही बड़ोदे लौट आये ।

यद्यपि महाराज साहब विहार कर गये थे तथापि उनके शिष्य मुनिराज श्रीहर्षविजयजी महाराज वहीं थे । दो तीन साधु बीमार हो गये थे इसलिए उनकी सेवाशुश्रूषा करनेके लिए आचार्य महाराज उन्हें छोड़ गये थे । इसलिए व्याख्यान सुननेके लिए नियमित रूपसे आप जाते रहते थे । मुनि श्रीहर्षविजयजी महाराजके उपदेश बालजीवोंके साध्य मोह-रोगको नष्ट करनेके लिए रसायन थे । इसलिए रातके समय भी अनेक भव्य जीव उनके पास आया करते थे । आप भी जाया करते थे ।

एक दिन आपके सिवा अन्य कोई श्रावक नहीं आया था । मौका देख आपने अपने हृदयकी भावना कही । उन्होंने इस भावनाको पल्लवित किया और समय पर दीक्षा दिलानेका भी आश्वासन दिया ।

एक महीनेके बाद उनका भी वहाँसे विहार हुआ । अपने भाईके साथ आप भी उनके साथ छाणी गये । मुनि श्रीहर्ष-विजयजी महाराजके उपदेशसे और संगसे आपके हृदयमें कुछ विशेष निर्भयता आगई थी । इसलिए आपने भाईसे कहा:—
" कल स्कूलकी छुट्टी है, इसलिए यदि आप इजाजत दें तो मैं महाराज साहबके साथ अगले गाँवतक विहारमें जाऊँ । कल-शामको घर पहुँच जाऊँगा । "

भाईके दिलमें अब अगला संदेह बाकी नहीं रहा था; क्योंकि आप नियमित रूपसे सभी काम किया करते थे; इसलिए उन्होंने प्रसन्नतासे इजाजत दे दी। वे खुद घर चले गये।

आपके लिये यह स्वाधीनताका पहला दिन था। आपने मुनि महाराज श्रीहर्षविजयजीके साथ जी खोलकर बातें कीं और निश्चय किया कि, अपने आप वापिस घर न जाऊँगा। यदि भाई साहब आयँगे तो जैसा मौका होगा किया जायगा।

आप मुनिराजोंके साथ अहमदाबाद पहुँचे। उसी दिन आपके भाई खीमचंदजी बाहर ही आमिले। दो चार चपत लगाये कान पकड़कर आगे किया। आप रोते धोते भाईके साथ घर चले गये।

इस बार पूरी देखरेख होने लगी। एक क्षणके लिऐ भी आप अकेले नहीं रह सकते थे। इच्छा न रहने पर भी नियमित रूपसे स्कूल जाना पड़ता था। आ के भाई अपने साथ ले जा कर स्कूल मास्टरके सिपुर्द कर आते थे; उसे सावधान कर आते थे और शामको छुट्टी होते ही वापिस स्कूल आकर ले जाते थे।

पहले कभी बाहरकी हवा न लगी थी; इसलिए आप अपने भाईसे बहुत ज्यादा डरते थे; कहीं बाहर निकलनेका साहस भी नहीं होता था। अब बाहरकी हवा खा चुके थे; कर्मरोगके

वैद्योंकी संगतिमें रह चुके थे इसलिए आपके हृदयसे भय बहुत कुछ निकल गया था । तो भी भाईके सामने बोलनेका हौसला नहीं पड़ता था । एक तरफ़ भाईका प्रबंध था दूसरी तरफ़ आप निकल भागनेका अवसर देखते थे । एक दिन अवसर मिल गया । छुट्टीका दिन था । देखरेख करनेवाला कोई नहीं था । इसलिए आप घरसे यह कहकर रवाना हुए कि दुकान पर जाता हूँ । रवाना हुए मगर सीधे बाजारके रस्ते होकर जाना कठिन था; क्योंकि बाजारमें खीमचंदभाई अपनी दुकान पर बैठे थे । सिंहके सामनेसे बकरीका भागना जितना कठिन है उतना ही आपके लिए खीमचंदभाईके सामनेसे होकर चला जाना था । अतः आपने जंगलका रस्ता लिया । गरमीका मोसिम था । अष्टमीका दिन था । आपने एकासन किया था । पैरोंमें जूते न थे । जमीन आगकी तरह तप रही थी । उसी जमीनमें आप धुन लगाये चले जा रहे थे । प्यासके मारे हलक़ सूखने लगा; पैरोंमें जल जल कर छाले पड़ने लगे; मगर आपका इस ओर ध्यान नहीं था । आप तो इस जेलखानेसे आत्माको सदाके लिए मुक्त करनेकी धुनमें थे; वैराग्यका प्रेमी भला इन शरीरके कष्टोंकी क्या परवाह करने लगा था ? वैराग्य इसीको कहते हैं । कवि दाग़ कहते हैं—

कमाल इश्क़ है ए दाग़ महव हो जाना;
मुझे ख़बर नहीं नफ़ा क्या जरर कैसा ।

स्टेशन पर पहुँचकर आपने अहमदाबादका टिकिट लिया। दिनभर प्रासुक पानी न मिलनेसे जी बड़ा बेचैन रहा। जीवनमें आजका दिन सबसे पहला था कि, आपको परिसहका अनुभव-जन्य ज्ञान हुआ; आजतक साधुओंके परिसह सहनकी केवल बातें पढ़ा और सुना करते थे; आज आपको विदित हुआ कि, परिसह कैसे सहा जाता है और मनको अधिकारमें रखनेके लिए कितनी कठिनताका सामना करना पडता है।

शामको अहमदाबाद पहुँचे। प्यास बुझानेके लिए आप सीधे सेठ भूराभाईके घर पहुँचे। इनका घर आपने पहली बार आये थे तब देख रक्खा था। इनके घर हमेशा प्रासुक पानी रहा करता था और उस दिन तो खास अष्टमी थी। जाते ही पानी मिल गया। पानी पी कर मन शान्त हुआ। वहाँ कुछ क्षण बातचीत कर आप मुनि महाराजके पास गये।

स्वर्गीय १००८ श्री आत्मारामजी महाराज अपनी शिष्य-मंडली सहित प्रतिक्रमण करनेकी तैयारी कर रहे थे। आपने जाकर वंदना की। महाराज बोले.—" ले * भाई छगन आ गया। वैराग्यमें पूरा रंग गया है। धर्मकी इसके कारण बहुत

* मुनि श्रीहर्षविजयजी महाराजको सब साधु भाईजी महाराज कहा करते थे; इस लिए सूरिजी महाराज भी आपको कई बार भाई ही कहा करते थे।

प्रभावना होगी। यह मेरी भविष्य वाणी रही। " आपने यथा-क्रम सबको वंदना की। रात आनंदसे बीती।

दूसरे दिन जब आप भोजन करके वापिस लौटे तो सामने खीमचंदभाई खड़े दिखाई दिये। आपके तो हाथके तोते उड़ गये; आनंद विषादमें परिवर्तन हो गया। हँसते हुए चहरे पर उदासीकी छाया आ पड़ी। आप बड़े चक्करमें पड़े। सांसारिक विवेक कहता था कि जिन्होंने तुझे पाला पोसा पढ़ा लिखाकर इतना बड़ा किया उन्हींका दिल दुखानेंकी धृष्टता करता है! वैराग्य कहता था,—ये सब खयालात फिजूल हैं। जीव कर्माधीन है। सांसारिक भलाई बुराई कर्मोंके रचे हुए आडंबर हैं। जब तक जीव इनमें फँसा रहता है तबतक उसे अपनी भलाईका खयाल नहीं होता। इसलिए संसारके जंजालसे छूटनेका यत्न कर। इस कर्मके जालमें न फँस।

मगर खीमचंद भाईने आपको इस झंझटसे क्षणभरके लिए बचा दिया। वे ठहरे वणिक्। कहावत प्रसिद्ध है

'वणिग्गेहे च धूर्तता'

उसीसे उन्होंने अपना काम निकाला। उन्होंने निराशा व्यंजक करुण स्वरमें सूरिजी महाराजसे अर्ज की,—" महाराज! आप ज्ञानी छो! हुं मूर्ख आपने वधारे शुं कहुं? छगन नासीने आपनी पासे आव्यो छे। एनी मरजी हशे तो हुं ना नथी कहेतो। घणी खुशींथी ए संयम ले। पण हाल एनी उमर बहुज

न्हानी छे। आप एने दीक्षा आपवामां उतावळ न करशो । हाल एने भणावो । पछी ज्यारे ए मोटो थाय अने आपने योग्य लागे त्यारे मने फरमावशो । हुं पोते आवीने बहु आनंदनी साथे एने दीक्षा अपावीश । "

खीमचंदभाईकी बातें सुनकर सभी साधु प्रसन्न हुए। किसीने इन्हें भव्यजीव, किसीने, उदार, किसीने सरल हृदयी और किसीने धर्मपरायण बताया । आपने भी आनंदोल्लासके साथ ये बातें सुनीं । ऐसा मालूम हुआ मानों स्वर्गका राज्य मिल गया है ।

सूरिजी महाराजने कहाः—" जैसा तुम कहते हो वैसा ही होगा । तुम बेफिकर रहो । मगर साधुओंके सामने मिथ्या बोलनेसे बचना । " फिर आपकी तरफ़ मुखातिब होकर कहाः— " छगन ! तुमने अपने भाईकी बातें सुन लीं न ? शान्ति और धैर्यके साथ विद्याध्ययन करना होगा । दीक्षा तभी मिलेगी जब तुम्हारे बड़े भाई इजाजत देंगे । "

आपको तो विश्वास हो गया था कि, अब मेरी दीक्षामें कोई विघ्न नहीं आयगा इसलिए आप प्रसन्नतासे बोलेः—" मैं आपके चरणोंमें रहकर विद्याध्ययन और संयम साधनेका अभ्यास कर सकूँगा । अभी मेरे लिए इतनाही बस है । जब आप और भाई मुझे योग्य देखें तभी दीक्षा दें, दिलावें । मेरा हृदय संसारके बंधनोंसे छूटनेके लिए तड़पता था सो आज मेरी वह तड़प मिट गई है । "

खीमचंदभाई प्रसन्न होकर उठे । आपको दो चार उपदेश देकर अपने घर बड़ोदे चले गये । खीमचंदभाईके हृदयको कोई भी न पहचान सका । किस तरकीबसे वे अपना अभिप्राय सिद्ध कर गये, इस बातका किसीको विचारतक न आया । वे समझते थे कि, अहमदाबाद बड़ा शहर है । यहाँ यदि कुछ गड़बड़ी करूँगा तो छगन कहीं जाकर छिप जायगा और उसे वापिस ढूँढ लाना असाध्य हो जायगा । साधु यहीं तो रहेंगे ही नहीं । जब ये छोटे गाँवमें विहार कर पहुँचेंगे तभी छगनको पकड़ लेजाऊँगा । साधुओंके पास क्या अपने भाईको रहने दूँगा ।

'कार्यदक्षो वणिक् पुत्रः'

के अनुसार अपना कार्य करके वे चले गये ।

खीमचंदभाईके एक मुनीम था । जातिका पाटीदार, नामथा भगवानदास । उसकी सुसराल अहमदाबादमें थी । खीमचंद-भाई बड़ोदे जाते समय आपको देखते रहनेकी सूचना भगवान-दासके सालेको देते गये । बड़ोदे जाकर भगवानदाससे अपनी सुसरालमें एक पत्र लिखवा दिया । उसका आशय यह था कि,—छगनको एक दो बार दिनमें देख आना और साधु किधर विहार करते हैं और छगन किनके साथ जाता है इस बातका खयाल रखना । विहार होते ही तारद्वारा सूचना देना ।

मुनीमका साला उपाश्रयमें आया । लोगोंने उसको आनेका

कारण पूछा । उसने जवाब दिया कि,—मेरे बहनोईके सेठका साला यहाँ पढ़ता है । उसकी सार सम्भाल लेने और उसे किसी चीजकी जरूरत हो तो लादेनेके लिए आया हूँ । फिर किसीने उससे कोई बात न पूछी । वह रोज एक चक्कर लगा जाता । आप भी उससे अच्छे हिलमिल गये ।

उस समय अहमदाबादके नगरसेठ श्रीयुत प्रेमाभाई थे । वे बड़े धर्मात्मा और भव्य जीव थे । आत्मारामजी महाराजके प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी । वे अक्सर कहा करते थे कि, मैंने आजतक सच्चा गीतार्थ यदि कोई देखा है तो वे आत्मारामजी महाराज ही हैं । वे बहुत वृद्ध थे । पचीस पचास कदम भी कठिनतासे चल सकते थे; तो भी आत्मारामजी महाराजके व्याख्यानमें हमेशा आते थे और नौकर उन्हें छोटीसी डोलीमें बिठाकर ऊपर, जीना चढ़ा, रख देते थे । दुपहरमें भी वे हमेशा आते और एक दो सामायिक कर जाते । सामायिकमें वे महाराज साहबके साथ तत्वचर्चा किया करते ।

एक दिन इन्होंने आपको देखा । महाराज साहबसे दर्याफ्त किया । महाराज साहबने सारी बातें कह सुनाई ।

दूसरे दिन सेठ व्याख्यान सुनकर घर जाने लगे तब उन्होंने श्रीयुत नानचंद केवल नामके श्रावकको कहा कि, आज दुपहरमें

छगनको लेकर मेरे घर आना। श्रीयुत नानचंद अच्छे श्रद्धालु श्रावक थे। साधुओंके पूरे भक्त थे। नगरसेठके यहाँ अक्सर जाया आया करते थे। सेठकी इच्छानुसार नानचंदभाई आपको लेकर सेठके घर गये।

सेठने आपसे पूछाः—"तुम साधु क्यों होना चाहते हो?"

आपने उत्तर दियाः—" आत्मकल्याणके लिए।"

" तुम्हें किसीने बहकाया है ? "

" नहीं। "

" घरमें दुःख है ? "

" नहीं। "

सेठने इसी तरहकी अनेक बातें पूछीं। आपको डराया; लालच दिखाया, मगर आप अपनी भावना पर स्थिर रहे। सेठने एक जरीकी टोपी मँगाई और कहाः—" यह तुम पहनो; मुझे तुम्हारी सादी टोपी दे दो। मैं इसको बतौर यादगारके अपने संदूकमें रक्खूँगा। "

आपने फर्मायाः—"यदि आप इस टोपीको रखना चाहते हैं तो इसमें मेरी कोई हानि नहीं है। चार दिन बाद इसे उतारता चार दिन पहले ही आपके भेट कर जाऊँगा। मगर आपकी जरीकी टोपीका बोझा उठानेके लिए मुझसे न कहिए। सादी टोपीका बोझा उठानेमें भी असमर्थ, आपकी जरीकी टोपीका भार कैसे सह सकूँगा ?

सेठ हँस पड़े और स्नेहसे सिरपर हाथ फिराते हुए बोले:— " कल्याण हो बेटा! तुम शासनको दिपाओगे और अपने कुलको उज्ज्वल करोगे। "

आप वापिस लौट आये। आत्मारामजी महाराजने पूछा:— " सेठके पास हो आया? "

" हाँ साहब। " कह कर आप एक ओर जा बैठे और पढ़नेमें लीन हुए।

दूसरे दिन सेठ आये। उन्होंने सारी बातें महाराज साहबको सुनाई और प्रसन्नता प्रकट की। महाराजने भी कहा:— " सेठजी! मैंने जिस दिनसे इसे देखा है उसी दिनसे मेरे हृदयमें भी ये ही भाव हैं। ऐसे जीवोंहीसे शासनकी ज्योति अखंड जागती रहेगी। "

इसी वर्ष (यानी सं. १९४२ में) पालीताणेके राजाके साथ जैन श्रीसंघका जो मुकदमा चलता था उसका फैसला हुआ। सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए जानेवालोंसे राजा जो मूंडका (प्रत्येक व्यक्तिसे टेक्स) लिया करता था वह बंद हुआ और तीर्थों तथा यात्रियोंकी हिफाजतके लिए जैनोंसे, राजाको पन्द्रह हजार रुपये सालाना दिलायाजाना नक्की हुआ।

इस निमित्तसे बड़ोदेके सेठ गोकलभाई दुल्लभदास, भरोचके सेठ अनूपचंद मलूकचंद, सूरतके सेठ कल्याणभाई, धूलियाके

सेठ सखाराम दुल्लभदास और खंभातके सेठ पोपटभाई अमरचंद आदिने आकर आत्मारामजी महाराजसे विनती की कि यदि आप इस वर्ष पालीतानेहीमें चौमासा करेंगे तो बड़ा उपकार होगा। आपके वहाँ विराजनेसे अनेक जीवोंको विशेषरूपसे यात्राका और तीर्थ-भक्तिका लाभ होगा।

आत्मारामजी महाराजने फर्माया:—" आपलोगोंका कहना ठीक है; मगर वहाँ साधुओंका निर्वाह कैसे हो सकता है ? यद्यपि कहनेको वहाँ श्रावकोंके पाँच सौ घर हैं तथापि साधु साध्वियोंके लिए तो पाँच भी कठिनतासे होंगे। ऐसी हालतमें चौमासा कैसे हो सकता है ? "

पालीतानेकी उस वक्तकी हालतमें और इस वक्तकी हालतमें बहुत फर्क हो गया है। मगर जिन्होंने उस समयकी दशा देखी है वे जानते हैं कि, वहाँके श्रावक सभी गरीब थे। उनकी आजीविका यात्रियोंके आधार थी। इसके अलावा वे सभी यतियों—गोरजी—के सेवक थे। बहुत समयसे वहाँके यतिजीने आनंदजी कल्याणजीकी पेढीमें भी अपना दखल जमा रक्खा था; इससे सभी श्रावक यतियोंसे डरते भी थे। यति लोग संवेगी साधुओंके साथ ऐसा सद्भाव नहीं रखते थे जैसा आज रखते हैं। इसलिए साधुओंको आहारपानी मिलना तो दूर रहा रहनेको स्थान भी कठिनतासे मिलता था। ऐसी दशामें अनेक

कष्ट सहकर आत्मारामजी महाराजने वहाँ चौमासा किया था और भविष्यके साधुसाध्वियोंके लिए मार्ग निष्कंटक बना दिया था। कहा जाता है कि, सैकड़ों वर्षोंके बाद आत्मारामजी महाराजका ही चौमासा सबसे पहले इस परम प्रभाविक तीर्थ पर हुआ था और उन्हींने पालीतानेके श्रावकवर्गमें साधु-भक्तिका बीज बोया था। उसके बाद अनेक मुनिराजोंके—

'महाजनो येन गतःस पंथाः'

कहावतके अनुसार वहाँ चौमासे हुए हैं। अस्तु।

श्रावकोंने विनती की;—"यदि आप वहाँ चौमासा करना स्वीकार करें तो हम लोग भी सकुटुंब वहाँ चौमासेमे रहेंगे।"

सेठ प्रेमाभाई और सेठ दलपतभाईने—जो अहमदाबाद संघके मुखिया थे--विनती की कि,—"आप इस प्रार्थनाको स्वीकार करनेका अनुग्रह करें। आपके पुण्यप्रतापसे सबकुछ ठीक हो जायगा।"

महाराजने फर्माया:—"अच्छी बात है। ज्ञानीने जैसी स्पर्शना देखी होगी, वैसा ही होगा।"

बाहरके आये हुए श्रावकोंने प्रेमाभाई और दलपतभाईसे कहा कि—"आप महाराज साहबका विहार पालीतानेकी तरफ ही करावें और पालीतानेकी तरफ विहार होनेपर हमें सूचना दें ताके हम वहाँ जानेकी तैयारी करें।"

बाहरसे आये हुए श्रावकलोग महाराजसे बार बार विनती करके अपने अपने घर चले गये।

आत्मारामजी महाराजने अपने साधुओंकी सलाह माँगी। सबने प्रसन्नतापूर्वक पालीतानेमें चौमासा करनेकी सम्मति दी।

महाराजने फ़र्माया:—" इरादा बहुत अच्छा है। वहाँ जानेसे तीर्थसेवा, शासनसेवा, आत्मसाधन सभी कार्य सरलतासे हो सकेंगे। पवित्र वातावरणमें, प्रतिक्षण, अनायास ही, पवित्र और आत्मजागृतिकी भावनाएँ आती रहेंगी। जो श्रावक विनती कर गये हैं वे भी वहाँ आवेंगे और रहेंगे; उनके वहाँ रहनेसे वे आरंभ समारंभसे, छलकपटसे और व्यापार रोजगारसे होनेवाले पापास्रवसे मुक्त होंगे और ब्रह्मचर्यव्रतसे रहकर धर्मध्यानमें विशेषरूपसे अपने मनको लगासकेंगे। उन्हें भी लाभ है और हमें भी। उनके कारण हमें कठिनता कम पड़ेगी। तो भी मैं उनके ही भरोसे पालीतानेमें जाकर चौमासा करना नहीं चाहता। यदि आप लोगोंमें आत्मबल विकसित करनेके भाव हों ? धैर्यके साथ परिसह सहनेकी शक्ति हो और सभी तरहके उपद्रव, यदि हों, शान्तिके साथ सहनेका सामर्थ्य हो तो चलिए; हम लोग पालीतानेहीमें चौमासा करेंगे। इतना मुझे विश्वास है कि, थोड़े दिनके बाद शासनदेव हमारे लिए सब तरहके सुभीते कर देंगे। श्रावकोंमेंसे यदि एक भी किसी कारणसे पीछा हटा तो फिर सभी

बहाने बनायँगे; एक भी न आयगा । इसलिए अपने ही भरोसे पर उधर जानेका विचार करना चाहिए । "

सब साधुओंने एक स्वरसे कहा:—" हमें कष्टोंकी कोई परवाह नहीं है । हम पंजाबसे यहाँ तक आये हैं । रास्तेमें कहाँ सब जगह श्रावकोंके घर थे । कहीं जाट जमींदारोंके घरोंसे आहारपानी ले आये थे और कहीं निराहार ही, दोष रहित आहार न मिलनेसे, रहना पड़ा था । वहाँ तो पाँच सौ श्रावकोंके घर हैं; और अगर बीच बीचमें आहारपानी नहीं मिलेगा तो भी कोई चिन्ता नहीं है । आप तो केवल वहाँ चौमासा करनेकी आज्ञा भर दे दीजिए । "

महाराजने जब साधुओंका इस तरह उत्साह देखा तब कहा:—" अच्छी बात है । उधर ही विहार करेंगे । एक बार दादाकी यात्रा करलें, फिर जैसी स्पर्शना होगी होगा । "

पालीतानेकी तरफ विहार करनेका विचार स्थिर होगया । महाराजका इरादा था कि, पहले थोड़े थोड़े साधु उस तरफ़ जायें फिर मैं यहाँसे विहार करूँगा । मगर सेठ प्रेमाभाईने विनती की कि,—" पहले आपका ही यहाँसे विहार करना उचित होगा; क्योंकि लोगोंको इस समाचारसे उत्साह मिलेगा और जो भाग्यवान वहाँ जानेका इरादा रखते होंगे वे अपनी तैयारीयाँ करने लग जायँगे । अन्यथा सभी सोचेंगे कि, महाराज साहबने

तो उधर विहार किया ही नहीं है। शायद इरादा कम होगा।"

महाराज साहबने ही, प्रेमाभाईकी सलाह मानकर, पहले विहार किया। आप साबरमतीके पास सरखेज गाँवमें जाकर ठहरे।

विहारके समाचार सुनकर मुनीमका साला आया और उसने आपसे पूछाः—"क्या तुम भी आज ही जाओगे?"

आपने उत्तर दियाः—"आज नहीं एक दो दिनके बाद।"

वह चला गया और उसने बड़ोदे सुचना भेज दी कि,—"मैं ये लोग जब रवाना होंगे तब तार द्वारा खबर दूँगा।"

महाराज श्रीहर्षविजयजीका भी अहमदाबादसे विहार हुआ। पहला मुकाम सरखेज, दूसरा मोरैया और तीसरा बावला गाँवमें हुआ। यहाँ पर दुपहरमे जब साधु धर्मशालामें विश्राम ले रहे थे तब एक बैलगाड़ी घर घर करती हुई आकर वहाँ थम गई। गाड़ीके थमते ही एक आवाज आई। परिचित मगर क्रोधपूर्ण। आवाज सुनकर आपके हृदयमें एक भय पैदा हुआ। आपने उठकर नीचेकी तरफ़ देखा।

इतनेहीमें धड़ धड़ करते तीन आदमी ऊपर चढ़ आये। उनमेंसे एक आपके भाई खीमचंद थे; दूसरा मुनीम भगवानदास था और तीसरा आदमी था आपके बहनोई नानाभाई।

उन्होंने आते ही आपका हाथ पकड़ा और घसीटकर

नीचे ले गये। साधु चुपचाप देखते रहे; फकत इतना कहा:- " खीमचंदभाई बातोंहीसे काम चल सकता है। ऐसी खींचतान क्यों करते हो ? " मगर उनकी बात पर किसीने ध्यान नहीं दिया। क्षमा प्रधान धर्मके साधु पंच महाव्रत पालनेवाले शान्तिके साथ देखते रहने और कर्मकी विचित्र गतिका विचार करनेके सिवा और करते ही क्या ?

कुछ श्रावक भी वहाँ जमा हो गये थे। उन्होंने भी आपको धमकाया और खीमचंदभाईके साथ जानेका उपदेश किया। कारण यह था कि गाँवका पटेल मुनीम भगवानदासके सालेका सुसरा था। गाँवोंमें तो, इस बातको सभी जानते हैं कि, जिधर पटेल पटवारी होते हैं उधर ही सभी होते हैं।

उस दिन अपने पकड़नेवालोंके साथ आप बावलेहीमें पटेलके घर रहे। दूसरे दिन अहमदाबादकी तरफ़ रवाना हुए। दुपहरमें एक वृक्षके नीचे गाड़ियाँ खोलकर सभी कुछ विश्राम कर खा पी चलनेकी तैयारी कर रहे थे उसी समय वीरविजयजी महाराज आदि कुछ साधु, अहमदाबादसे पालीतानेकी तरफ़ जाते यहाँ आ मिले। आप उनके चरणोंमें गिर गये और गिडगिड़ाकर बोले:-" महाराज ! रक्षा कीजिए। "

वीरविजयजी महाराजने कहा:-" इतना उदास क्यों होता है ? अपने भाईको प्रसन्न करके, उनसे इजाजत लेके, आना। हमने भी तो बड़ी उम्रहीमें दीक्षा ली है। "

वीरविजयजी महाराजने यह बात चाहे किसी भी विचारसे कही हो, मगर उसका असर आपके दिल पर हताश करनेवाला और खीमचंदभाईके दिल पर उत्साह बढ़ानेवाला हुआ ।

शामको अहमदाबाद पहुँचे और मुनीमके सालेके मकान पर रहे । यहाँसे आपने भाग जानेका प्रयत्न किया; मगर नाकामयाब हुए ।

बड़ोदे पहुँचे । यहाँ, कहीं भाग न जायँ इस खयालसे, आपकी कैदीकी तरह रक्षा होने लगी । आपने भी—

'मौनं सर्वार्थ साधकं'

का पाठ पढ़ा । न किसीसे विशेष बातचीत न किसीके साथ ऊठ बैठ । चुपचाप अपने धर्मध्यानमें लगे रहते । नित्य प्रासुक जल पीते; एकासना, बीआसना, उपवास इच्छानुसार करते; कंबल पर सोते सुबेशाम प्रतिक्रमण करते और साधुकी तरह अपना जीवन बिताते ।

आपको यह मालूम था कि, आत्मारामजी महाराज खीम-चंदभाईकी आज्ञाके बिना कभी दीक्षा न देंगे इसलिए आपने सोचा कि, ऐसा काम करना चाहिए जिससे तंग आकर खीमचंद भाई आप ही छुट्टी दे दें । आपने, अपने पासकी चीजें याच-कोंको देनी शुरू कीं । जब वे पूरी हो गईं तब घरकी चीजोंमेंसे जो चीज समय पर आपके हाथ आ जाती वही याचकको

दे देते। दुकान पर भी इसी तरह करते। माँगने आए हुए याचकको कभी यथासाध्य, वापिस न जाने देते।

हीराचंद ईश्वरदास जौहरीके यहाँ, खीमचंदभाईकी ज्यादा बैठक थी। दोनों सगे मासीके लड़के भाई; हीराचंदभाईके कारण ही खीमचंदभाई भी कुछ गिन्तीमें आये थे इसलिए ये उनका उपकार भी मानते थे; इन पर उनका प्रभाव भी था; साथ ही वे धर्मात्मा और नेक सलाहकार भी थे। वे हमेशा यथासाध्य, दो, तीन, चार–जितनी हो सकती थीं उतनी–सामायिक किया करते थे। यदि कभी ज्यादा नहीं होती थीं तो एक तो नित्य करते ही थे। सामायिकमें वे अध्ययनके सिवा कभी दूसरी बातें न करते थे; इसलिए उन्हें तत्त्वोंका बोध भी अच्छा था। बड़ोदेमें आत्मारामजी महाराजके व्याख्यानोंको भली प्रकार समझने और उनपर मनन करनेवाले हीराभाई ही थे। आत्मारामजी महाराजपर उनकी असाधारण भक्ति हो गई थी।

एक दिन खीमचंदभाईने जाकर हीराचंदभाईसे कहा कि,–"छगन मुझे तंग कर रहा है और घरकी चीजें लुटा रहा है।" उन्होंने कहा,—" खीमचंद! तुम उसे व्यर्थ ही बाँध कर रखनेका प्रयत्न करते हो। मैं तो बराबर देख रहा हूँ कि, बचपनहीसे वह उदासीन है; वैरागी है। मैंने उसको सांसारिक कामोंमें कभी उत्साहसे भाग लेते नहीं देखा। महाराज आत्मारामजी जब

यहाँ पधारे थे तब नित्य प्रति वह व्याख्यानमें आता था एकाग्रता पूर्वक व्याख्यान सुनता था और एकटक महाराजकी तरफ देखा करता था। जब गुँहलीका वक्त आता यह उठकर चला जाता। एक दिन महाराजने पूछा,—"हीराचंदभाई वह कौन है और व्याख्यान समाप्त होते ही क्यों चलाजाता है?" मैंने उत्तर दिया था कि;—"यह मेरी मासीका लड़का है। सातवीं क्लासमें पढ़ता है। स्कूलका वक्त हो जानेसे चला जाता है।" महाराजने फर्माया था;—"हीराचंदभाई! मुझे यह लड़का होनहार मालूम होता है। इससे शासनकी शोभा बढ़ेगी। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि, यह गृहस्थीके बंधनमें न रहेगा।" महात्माके ये वचन मिथ्या न होंगे। अब तो यह उनके चरणोंमें रह भी आया है इससे उसका मन दृढ हो गया है। श्रीचंद्रविजयजी महाराजके समयसे इसके अंदर वैराग्यभावके अंकुर दिखे थे अब तो वे वृक्षके रूपमें बदल गये हैं। अब उसे इसके विरुद्ध कुछ कहना पाप है।

"एक बार मैंने चुन्नीभाईसे कहा था,—"चुन्नीभाई देख लो जीवकी अवस्था कैसी बदल जाती है। एक दिन किसीकी जेबमेंसे कोई चीज चली गई थी। तुमने छगनपर ही संदेह करके उसे रस्सीसे बाँधकर पीटा था; मगर उसके पाससे कुछ भी न निकला था। उस समय वह एक मामूली लड़का था और अब वह एक महान वैरागी है।" चुनीभाईको भी खेद था कि उन्होंने

ऐसे उच्च आत्माको सताया था। अस्तु। अब तू मुझसे क्या चाहता है ? "

खी०—"मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि वह भाग न जाय।"

ही०—"मैं उसे समझा दूँगा। मगर मैंने सुना है तू उसकी धर्मक्रियामें बाधा डालता है। वह गरम पानी पीना चाहता है; तू गड़बड़ कर देता है। परिणाममें वह दिन दिन भर भूखा प्यासा रह जाता है। ऐसा अनुचित काम कर पाप न बाँध। भावीमें जो होनेवाला है वही होकर रहेगा। "

खीमचंदभाईने कहा:—" मैं छगनको आपके पास भेज देता हूँ। आप जैसा उचित समझें करें। "

जैन और जैनेतर सभी लोगोंमें यह बात प्रसिद्ध थी कि, हीराचंदभाई सच्चे सलाहकार हैं। जो उनके पास सलाह लेने जाता था वे उसे उचित ही सलाह देते थे। उनकी सलाहके अनुसार काम करनेवालोंको प्रायः सफलता ही मिलती थी। यदि कोई अनुचित बात उनके सामने करता और सलाह चाहता तो वे बड़े नाराज़ होते और उस मनुष्यको फटकार देते।

आप हीराचंदभाईके पास गये। इन्होंने प्यारसे सिर पर हाथ फेर कर कहा:—" छगन! तू धर्म करने निकला है फिर इस तरह लोगोंकी आत्माको दुःख पहुँचाना तुझे शोभा नहीं देता। घरको उजाड़ना क्या तेरे लिए उचित है ? तू तो साधु

होगा मगर दूसरे भी क्या साधु होंगे ? घर उजाड़ कर क्या तू उनसे भीख मँगवायगा ? आजसे फिर कभी ऐसी बेजा हरकत न करना। भोजन तू चाहे यहाँ कर चाहे वहाँ। तेरे लिए दोनों घर खुले हैं। भोजन करके यहाँ आ जाया कर और कुछ पढ़ कर मुझे सुनाया कर। यहीं अपना अभ्यास भी किया कर। देख मेरे कहनेके माफ़िक चलेगा तो तेरा मनोर्थ सफल होगा; अन्यथा पछतायगा।"

आपने हीराचंदभाईकी बात स्वीकार की। उनके कथनानुसार निश्चिन्त होकर धर्माराधन करते हुए अपना जीवन बिताने लगे।

खीमचंदभाईके लिए यह बात असह्य थी कि छगनलाल आनंदसे अपने इष्ट मार्गकी साधनामें लगा हुआ है। वे हर समय यही सोचा करते थे कि, कोई ऐसी घटना हो कि छगनके भाव बदल जायँ।

ऐसा अवसर भी आया। आपके मामा जयचंदभाईके लड़के नाथालालका ब्याह था। खीमचंदभाईने उसमें आपको लेजाना स्थिर किया। सब जानते हैं कि, ब्याहोंमें गया हुआ मनुष्य वैरागी नहीं रह सकता। खीमचंदभाईने भी इसी ज्ञानका उपयोग किया। आपने ब्याहमें जानेसे इन्कार किया। खीमचंदभाईने कहा,—"अगर छगन नहीं जायगा तो मैं भी ब्याहमें न

जाऊँगा।" आखिर सबके दबावसे आपने ब्याहमें जाना स्वीकार कर लिया।

साधकोंके लिए संसारमें कठिनाइयाँ हमेशा आया करती हैं। ये कठिनाइयाँ ही साधककी उच्चताका सबसे पहले परिचय कराती हैं। खीमचंदभाई समझते थे कि अब छगन सब वैराग्य भूलकर ठिकाने लग जायगा। मगर उन्हें यह ज्ञात न था कि, कुदरत उन्हें ही अपना विचार छोड़ देनेका आग्रह करेगी।

शामको बरात रवाना होकर मामाकी पोलमें ठहरी। स्टेशन वहाँसे नजदीक था और सवेरे जल्दी रवाना होना था इसीलिए बराती यहाँ आ रहे थे।

आपको वह जगह मालूम थी इसलिये सबके पहले ही आप वहाँ पहुँच गये और प्रतिक्रमण कर एक कोनेमें खेस (दुपट्टा) बिछा सो रहे।

बरात आई। सब लोगोंने अपने अपने सोनेका इन्तजाम किया। खीमचंदभाई अबतक तो गड़बड़ीमें लगे हुए थे। सोनेके वक्त छगनकी सुध आई। उसे न देखकर घबरा गये। सोचा,--मौका पाकर भाग तो नहीं गया है। मगर वापिस उन्हें खयाल आया कि, छगन जबानका सच्चा है। जब उसने हीराचंदभाईको उनकी आज्ञाके विना कहीं न जानेका वचन दे दिया था तब वह जायगा तो नहीं; फिर वह गया कहाँ? इधर उधर खोजते उन्हें

एक कोनेमें गठड़ीसी पड़ी दिखाई दी। वहाँ जाकर देखते हैं कि, छगनलाल झुकझुकर दोनों हाथोंमें सिर रख सो रहा है। वे स्तब्ध होकर खड़े हो रहे। आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। हाय! मेरा भाई इस दशामें पड़ा है। मैंने इसके संथारियादि साधुओं-के से बिछोने छिपा दिये थे; मगर यह उनके बगैर भी आरा-मसे सो रहा है। सबसे पहले आज खीमचंदभाईके हृदयमें विचार आया कि मेरे किये कुछ न होगा; मेरा भाई शासनके लिए जन्मा है हमारे लिए,—केवल कुटुंबके दायरेहीमें बंद रह-नेके लिए नहीं। उन्होंने एक निश्वास डाला और पुकारा:—
" छगन ! "

आप उठ बैठे और आँखें मलते हुए पूछा:—" क्या ? "

खीमचंदभाईने पूछा:—" क्या विस्तरे नहीं थे सो जमीनपर सो रहा है ? लोग मुझे क्या कहेंगे ? "

आप बोले:—" कोई कुछ न कहेगा; और किसीके कहने सुननेसे क्या नियम तोड़ दिया जाता है ? "

इतनेहीमें रुक्मणी बहिनने आकरें आपको संथारियादि दे दिये और खीमचंदभाईसे कहा:—" भाई, छगनको इसके रस्ते जाने दो; फिजूल दुःख न दो। यह घरमें बैठा है इतना ही हमारे लिए बहुत है। "

१. गुजरातमें स्त्रियाँ भी बरातोंमें जाया करती हैं। ऐसा रिवाज है।

खीमचंदभाईने मन ही मन कहा,--"घरके लोग ही जब मेरे विरुद्ध इसे सहायता देते हैं तब मेरे अकेलेके किये क्या होगा ?" उनका मोहावरण कुछ हटा। वे सोचने लगे,—मैं क्यों अपराध करूँ ? क्यों अन्तराय कर्मको बाँधूँ ? यह विवाहित नहीं है कि, इसके चले जाने पर मेरे सिर दुखद उत्तर दायित्वका-जबाबदारीका--भार आपड़ेगा। यदि विवाहित होता तो भी मैं क्या कर सकता था ? श्रीकान्तिविजयजी महाराज और श्रीहंसविजयजी महाराज[1] भी तो विवाहित ही थे। वे अपनी पत्नियों और कुटुंबके लोगोंको छोड़कर चले गये; किसीने क्या कर लिया ? यदि इसके भाग्यमें साधु ही बनना लिखा है तो फिर मेरे लाख उपाय करने पर भी वह न मिटेगा और यदि नहीं लिखा है तो यह चाहे जितनी कोशिश करे कभी साधु न बन सकेगा। सच है—

> यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ;
> इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥[2]

वे फिर सोचने लगे,—हरिभाई सूबा, मगनलाल मास्टर, वाडीलाल

---

१. गृहस्थावस्थामें इनके नाम क्रमशः छगनलाल और छोटालाल थे।

२ भावार्थ—जो अनहोनी है वह कभी न होगी और जो होनी है वह कभी न टलेगी। यह विचाररूपी ओषधि चिन्ताको मिटानेवाली है। इसलिए इसको पीना चाहिए।

गाँधी और साँकलचंद खंभाती भी तो इसीके साथी थे। वे तो इससे उम्रमें भी बड़े थे। जब वे ही अपनी वैराग्य भावनाओं पर स्थिर न रह सके तब यह कैसे रह सकता है? दो दिन धक्के खाकर आप ही ठिकाने आजायगा। फिर बोलेः—" छगन! जैसी तेरी इच्छा! मगर एक बात कह देता हूँ—जो कुछ करे बहुत सोच समझ कर; मनको दृढ़ बनाकर करना।"

खीमचंदभाई चले गये। बिस्तरों पर लेटते ही निद्रादेवीने उन्हें अपनी गोदमें आराम दिया।

सवेरा हुआ। बरातने चलनेकी तैयारी की। आप जानते ही थे। इसलिए सवेरे ही उठे और अपने आवश्यक कार्यसे निश्चिन्त हो गये। प्रतिक्रमण हो चुका था। सामायिक पारनेकी देरी थी। खीमचंदभाई सबको रवाना कर आपके लिए ठहर गये। थोड़ी देरके बाद आप भी तैयार हो गये और अपना संथारिया बाँधकर बोले,—" चलिए।"

खीमचंदभाईने कहाः—" ला, तेरा संथारिया मुझे दे। मैं ले चलूँगा।"

आप बोले—" यह नहीं हो सकता। आप बड़े हैं। आपको अपने बिस्तर उठवानेके बराबर मेरी और कौनसी असभ्यता हो सकती है?"

" बस बस रहने दे अपनी सभ्यता!" कहते हुए

खीमचंदभाई विस्तर उठाकर रवाना हुए । आपने दौड़कर अपने भाईके हाथसे विस्तर ले लिए । दोनों स्टेशन पर पहुँचे । आज दोनों भाइयोंका कैसा स्नेह था । सच है—

सब दिन जात न एक समान ।

सभी रेलमें बैठे । गाड़ी रवाना हुई । वरात गाँव समनीमें जानेवाली थी, इसलिए पालेजके स्टेशन पर उतर गई । समनी-वाले गाड़ियाँ और छकड़े लेकर वरातको लेनेके लिए सामने आये थे । उन्हें कहा गया कि,—" बरातमें एक लड़का है । उसका नाम छगनलाल है । वह प्रासुक पानी पीता है और रातको भोजन नहीं करता । इसलिए पहले एक आदमीको भेज-कर उसके लिए भोजनका इन्तजाम कराओ । ऐसा न हो कि, वरात पहुँचे तबतक रात हो जाय या तबतक भोजनकी वहाँ तैयारी ही न हो और उसे भूखा रहना पड़े । "

समनीवालोंने एक आदमीको घोड़ेपर आगे भेज दिया । उसने वहाँ जाकर सब प्रबंध कर दिया । वरात भी एक घंटा दिन रहते ही समनी गाँवके पास पहुँच गई । गाँवके बाहर ही वरात ठहर गई । सामैयाकी–जुलूसके साथ वरातको गाँवमें ले जानेकी–तैयारी होने लगी । लड़कीवालोंकी तरफ़के एक आद-मीने आकर कहा कि,—' सामैयेमें अभी देर लगेगी; रातहोगी । ज्यादा रात भी हो जाय । इसलिए जिनको रात्रिका नियम है वे चलकर भोजन करलें । छगनलालजीको भेज दीजीए । "

गाँवोंमें सामैये प्रायः रातही को हुआ करते हैं । भोजन करनेमें विवेक जैसा अभी देखाजाता है वैसा उस समय नहीं था । आप रवाना हुए । आपके साथ ही खीमचंदभाई आदि दूसरे भी कई चले ।

समनीके भाइयोंने बड़े आदरके साथ सभीको भोजन कराया। आपकी तो उन्होंने इसलिए बहुत ज्यादा खातिरी की कि, आप छोटी उम्रमें ही धर्माचरणमें इतने दृढ हैं । स्त्री पुरुषोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा करते हुए कहा कि,—यह कोई होनहार जीव है । खीमचंदभाई आदि कहने लगे,—" धर्मकी बलिहारी है । एक धर्मात्माके कारण हम इतने आदमियोंकी कितनी खातिर तवाजे हुई और वह भी आशातीत । अगर बरातके साथ जीमते तो न जाने कब पेटमें पड़ता; और वह भी ठंडा । अभी कैसा गरमा गरम मिल गया है ! इसकी रीस हो सकती है ? हम तो जबतक यहाँ रहेंगे छगनके साथ ही जीमते रहेंगे । "

खीमचंदभाईके हृदयमें धर्मकी श्रद्धा तो थी ही । इस घटनाने उसमें विशेषता ला दी । इस विशेषताने आपके मार्गकी भी बहुतसी असुविधाएँ निकाल दीं ।

बरातसे वापिस बड़ोदे आगये । थोड़े दिन बाद समाचार मिले कि, महाराज साहब श्रीआत्मारामजी पालीताने पहुँच गये हैं । वहाँ अहमदाबादके नगर सेठ प्रेमाभाई हेमाभाई, तथा सेठ दलपतभाई भग्गुभाईके पत्रके कारण सेठ आनंदजीकी पेढीकी

तरफसे और पालीताना दर्बारकी तरफ़से आत्मारामजी महाराजका, बड़ी धूमके साथ स्वागत किया गया और नगरप्रवेश कराया गया ।

आपके दिलमें पालीताने जानेकी चटपटी लगी । आपने सुना कि, वड़ोदेसे परम श्रद्धालु, धर्मात्मा सुश्रावक सेठ गोकुलभाई दुल्लभदास और परम श्राविका विजली वहिन आदि कई श्रावक श्राविकाएँ पालीताने जानेवाले हैं । उनमेंसे कई तो पालीतानेहीमें चौमासा वितायँगे और कई यात्रा करके लौट आयँगे । आप सेठ गोकुलभाई और विजली वहिनके पास पहुँचे और बोलेः—" मुझे भी अपने साथ ले चाहिए । "

उन्होंने उत्तर दियाः—" आनंदसे हमारे साथ चलो; हमारे साथ ही रहना और अध्ययन करते रहना । हाँ तुम्हें अपने भाईकी आज्ञा जरूर ले लेनी होगी । उनकी इजाजतके बिना हम तुम्हें नहीं ले जा सकेंगे; क्योंकि उनका मिजाज तेज है । वे हमसे कुछ कह बैठें तो अच्छा न हो । "

आप बोलेः—" मैं इसका प्रबंध कर लूँगा । मुझे तो केवल गुरु महाराजके चरणोंमें पहुँचू तबतकके लिए साथकी जरूरत है । मैं कभी गया नहीं हूँ इसी लिए मार्गसे अपरिचित आपके साथ जाना चाहता हूँ । "

आप हीराभाईके पास गये और नम्रताके साथ बोलेः—" मुझे पालीताने जानेकी इजाजत दिला दीजिए । "

हीराभाईने खीमचंदभाईको बुलाया और कहा:–"छगन पालीताने जाना चाहता है। साथ भी अच्छा है। यात्रार्थ भेजनेमें क्या कोई हर्ज है ?"

खीमचंदभाईने उत्तर दिया:—"यात्रा जाते मैं नहीं रोकता। इसकी इच्छा हो वहाँ जाय; यदि पालीतानेहीमें चौमासा करना चाहे तो भी करे। मगर इसको प्रतिज्ञा करके जाना होगा कि,–यह वापिस बड़ोदे जरूर आयगा।"

आपने सोचा सस्तेहीमें छूटते हैं। झटसे बोल उठे,–"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि बड़ोदे जरूर जाऊँगा।"

खीमचंदभाईने इजाजत दे दी। उन्होंने खर्चेके लिए सेठ गोकुलभाईको रुपये दिये और उनको कहा:–"जैसे आप इसे अपने साथ ले जाते हैं वैसे ही वापस ले आना। मैं इसे आपको सौंपता हूँ।"

गोकुलभाई बोले:—"साथमें ले जाना और सार सम्भाल रखना हमें मंजूर है मगर वापस ले आनेका जिम्मा हम नहीं ले सकते। यदि यह राजीखुशी हमारे साथ आयगा तो हम ले आवेंगे नहीं आयगा तो हम उत्तरदाता नहीं। इच्छा हो भेजो न हो न भेजो।"

आप बोले:—"जब मैं वापस आना स्वीकार कर चुका हूँ तब इनके साथ कौल करार करनेकी क्या जरूरत है ?"

खीमचंदभाईने वैसे ही जानेकी इजाजत दे दी। पालीताना

पहुँचे । अपनी आयुमें पहली ही बार आपने दादाके दर्शन किये । आपको उस समय जो आनंद हुआ वह वर्णनातीत है ।

सं० १९४३ का चौमासा आपने पालीतानेहीमें स्वर्गीय श्रीआत्मारामजी महाराजके पास विताया । यथाशक्ति विद्याभ्यास भी करते रहे । पंजाबी पंडित खीमचंदजी ओसवालके पास चंद्रिका पढ़नी शुरू की । पंडित अमीचंदजी पट्टी जिला लाहोरके निवासी थे । जिस समय आत्मारामजी महाराजकी श्रद्धा स्थानकवासियोंके पंथसे हट गई, उस समय अमीचंदजीके पिता घसीटामलको स्वर्गीय महाराजने कहा कि,—तुम्हारे तीन पुत्र हैं । उनमें अमीचंदकी बुद्धि तेज है । तुम इसे संस्कृतादि विद्या पढ़ाओ । फिर जो कुछ सत्य बात होगी सो तुम्हें मालूम हो जायगी। तुम्हारा बेटा तो तुम्हें असत्य बात नहीं कहेगा न?

लाला घसीटामलके दिलमें यह बात जच गई । उन्होंने अमीचंदको संस्कृत पढ़ाना प्रारंभ कर दिया । जब व्याकरण न्याय, धर्मशास्त्र आदिमें अमीचंद्र प्रवीण हो गये तब उनके पिताने उनसे पूछाः—“ बेटा बता,—सूत्रोंका अर्थ पूज्य अमरसिंहजी करते हैं वह सत्य है या आत्मारामजी महाराज करते हैं वह सत्य है ? ”

अमीचंदजीने उत्तर दियाः—“ पिताजी ! श्री आत्मारामजी महाराज फर्माते हैं वही सत्य है । ये ही जैनधर्मका—सत्य मार्गका उपदेश देते हैं । ”

उसी दिनसे लाला घसीटामलजीकी श्रद्धा ढूँढकपंथसे हट गई ।

यह बात तो निश्चित है कि, विद्वानोंसे कभी दुकान्दारी नहीं होती । यही हालत पंडित अमीचंद्रजीकी भी हुई । उन्हें अपने योग्य कामकी जरूरत मालूम हुई । एक बार मुर्शिदाबाद-वाले बाबू धनपतिसिंहजीने कहा:–" आप गुरु महाराजकी (स्व० आत्मारामजी महाराजकी) सेवामें रहिए और साधुओंको पढाइए । साधर्मीभाई समझकर आपकी योग्य सेवा होती रहेगी । तभीसे वे साधुओंके साथ ही रहते थे । स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजीके प्रायः सभी साधु आपके पाससे कुछ न कुछ सीखे हैं,–उस समय सीखते थे । पालीतानेके चौमासेमें चौबीस साधु थे उनमेंसे पन्द्रह सोलह साधु अमीचंद्रजीके पास उस समय पढ़ते थे ।

आपकी बुद्धि तेज थी । इसलिए आपने चौमासेहीमें चंद्रिकाका पूर्वार्द्ध समास तक समाप्त कर दिया। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि, स्वर्गीय महाराज आप पर उसी दिनसे विशेष स्नेह रखते थे जिस दिनसे आपको उन्होंने देखा था और आपकी बुद्धिका परिचय पाया था । अब चौमासेमें साथ होनेसे विशेष अनुग्रह हो गया । आप अभी अदीक्षित थे तो भी महाराज आपहीके पाससे अपना लिखानेका और पत्रव्यवहारका कार्य कराते थे । आपका भी स्कूलके अध्ययनके कारण लिख-

नेमें अच्छा अभ्यास था इसलिए फुर्तीके साथ हरेक कार्य कर-दिया करते थे । गुरु महाराजका अनुग्रह देखकर अन्यान्य साधु भी आपसे स्नेह करने लग गये थे । सच है—

'यथा राजा तथा प्रजा ।'

आनंदके साथ चौमासा समाप्त हुआ। लोग यात्रार्थ आने लग गये । इस वर्ष आपकी बहिन श्रीमती जमनाबहन भी यात्रार्थ आई थीं ।

नरसि केशवजीकी धर्मशालामें—जहाँ स्वर्गीय महाराजका चौमासा था—अठाई महोत्सवके लिए एक भव्य मंडप तैयार हो रहा था; क्योंकि उसमें धुलियावाले सेठ सखारामजी बारह व्रत ग्रहण करनेवाले थे । मंडपको जमनाबहनने देखा । उन्होंने किसीसे कुछ पूछताछ किये बिना ही यह निश्चित कर लिया कि, यह तैयारी मेरे भाई छगनलालको दीक्षा देनेके लिए हो रही है । उन्होंने तत्काल ही बड़ोदे खीमचंदभाईको तार दे दिया कि,—शीघ्र ही पहुँचो । मिगसर बुदी (गुजराती कार्तिक बुदी) पंचमीके दीन छगनलालको दीक्षा दी जायगी ।

खीमचंदभाईने तत्काल ही एक तार स्वर्गीय आचार्यश्रीको दिया कि,—छगनको दीक्षा न देना । और दूसरा तार पालीताना दर्बारको दिया कि,—अमुक साधुको रोको, वे मेरे भाई छगनको और मेरी इजाजतके दीक्षा न दें ।

पालीताना दर्बारने अपना कर्तव्य किया । एक राजपुरुष

सूरिजी महाराजके पास आया और तारका अभिप्राय बतलाकर बोला:—" आपको दर्बारमें आना होगा; यदि आप नहीं आसकते हों तो अपनी ओरसे किसी विश्वस्त मनुष्यको भेज दीजिए । "

उस समय वहाँ बड़ोदावाले सेठ गोकुलभाई, घूलियावाले सेठ सखारामभाई, भरूचवाले सेठ अनूपचंदभाई और खभातवाले सेठ पोपटभाई ऐसे चार श्रावक मौजूद थे । वे बोले.—" चलो हम आते हैं । " कलकत्तावाले राय साहब बद्रीदासजी मुकीम भी उस समय यात्रार्थ आये हुए थे और वे खास पालीताना दर्बा-रके महेमान थे; महलोंहीमें ठहरे हुए थे । सभी उनके पास गये और सारा हाल उन्हें कह सुनाया ।

राय साहब हमारे चरित्र नायकको साथ लेकर पालीताना दर्बारके पास पहुँचे । उन्होंने सत्य बात दर्बारको बताई और कहा कि—" किसीने दीक्षाकी झूठी अफवा उड़ादी है । जिस लड़केको दीक्षा देनेके विषयमें लिखा गया है वह आपके सामने खड़ा है । "

दर्बार बोले:—" जब दीक्षा दी ही नहीं जाती है तब विशेष छानबीनकी हमें कोई जरूरत नहीं दिखती । हमारे पास एक आदमीने अर्जी भेजी उसकी जाँच करना हमारा कर्तव्य था। हमने जाँच की और हमें मालूम हो गया कि, बात गलत है । अगर दीक्षा देनेकी बात सच होती तो यह देखना हमारा फर्ज

था कि लड़का छोटी उम्रका तो नहीं है। मगर लड़केको देखनेसे और जाँचसे हमें यह निश्चय हो गया है कि, लड़का बड़ी उम्रका है और अच्छा पढ़ा लिखा होशियार भी। आप लड़केको लेजाइए और महाराज साहबसे अर्ज कीजिए कि, कष्टके लिए क्षमा करें।

चौमासा समाप्त हो गया। महाराज साहबका विहार पालीतानेसे होनेवाला था। जमना बहिनने आपको अपने साथ चलनेके लिए बहुत आग्रह किया मगर आप राजी न हुए। वे चली गई। स्वर्गीय महाराजका वहाँसे विहार हुआ। हमारे चरित्रनायकने भी उनके साथ ही अपने बिस्तरे और पढ़नेके ग्रंथ उठाकर प्रयाण किया। क्रमशः विहार करते हुए आचार्य महाराज राधनपुर पधारे। आप भी साथ ही राधनपुर पहुँच गये।

इसी तरह करीब तेरह चौदह महीने गुजर गये। आपने दो बार दीक्षा लेनेका प्रयत्न किया और दोनों ही बार असफल हुए। खीमचंदभाईकी आशा दोनों ही बार सफल हुई। अब तीसरी बार इम्तहानका समय आया-

[1]शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ,
माकुरु यत्नं विग्रह संधि।

1. भावार्थ—हे जीव! यदि तू शीघ्र ही मोक्ष चाहता है तो शत्रु और मित्र, पुत्र और बंधुके साथ झगड़ा या मेल करनेका यत्न न कर; सबके साथ समानताका वर्ताव कर। (चर्पट पंजरी)

भव समचित्तः सर्वत्र त्वं,
वाञ्छस्यचिराद्‌ यदि विष्णुत्वम्‌ ॥

दुनिया[1] है वह सय्याद कि सब दाममें इसके-
आ जाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता।

हमारे चरित्र नायक तो कबसे मोक्षके अभिलाषी थे। उस मार्ग पर चलनेका यत्न करते थे; कवि जौकके कथनानुसार आप दाना बनकर इस दुनियाकी जालमें फँसना नहीं चाहते थे।

लगभग दस महीने तक आप स्वर्गीय महाराज साहबके पास रह चुके थे। साधुसंगतिमें और श्रावकोंके घर भोजन करने जाया करते थे इससे दिलकी झिझकन मिट गई थी। एक तो साधर्मी भाई और दूसरे दीक्षा लेनेका उम्मेदवार; श्रावक लोग सोचते हमारा धनभाग है कि, हमें ऐसे सुपात्रको भोजन कराने-का अवसर मिलता है। वे बड़े आदर और आग्रहके साथ आपको अपने यहाँ ले जाते और प्रेमके साथ भोजन कराते। स्त्री पुरुष आपकी प्रशंसा करते,-तुम धन्य हो। तुम्हारा जीवन धन्य है। आप सिर झुका लेते। लोग कहते,-कैसे विनयी हैं? इनसे शासनकी प्रभावना होगी।

इतना होनेपर भी आपके दिलमें बेचैनी थी। आपका

---

१. संसार ऐसा शिकारी है कि, सभी उसकी जालमें फँस जाते हैं; कोई दाना-बुद्धिमान ही उसमें नहीं आता है।

मन आपसे बार बार पूछता,—इस तरह कबतक रहोगे ? कोई जवाब न मिलनेसे अन्तरात्मामे एक दर्द पैदा होता । इस स्थितिका अन्तलानेके लिए आपका मन इसी तरहसे तड़पताथा जिस तरहसे पानीमें डूबनेवाला आदमी बाहर निकलनेके लिए तड़पता है ।

वोह कौनसा उकूदा[1] है जो वा[2] हो नहीं सकता ?
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ?

× × × ×

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पेठ ।
मैं बोरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ ॥

आप हमेशा सोचते कि,—किस तरह इस बातका फैसला हो ? किस तरह मैं इस झंझटसे निकलूँ ? एक दिन इसी तरह सोचते सोचते आपके चहरेपर प्रसन्नता छा गई । आप सहसा बोल उठे,—हाँ यह मार्ग बहुत अच्छा है । एकान्तमें बैठकर आपने तीन पत्र लिखे । उनमेंसे एक खीमचंदभाईके नाम था जिसे रजिस्ट्री कराके भेजा; दूसरा सेठ हीराभाई ईश्वरदासके नामका था और तीसरा था सेठ गोकुलभाई दुल्लभदासके नामका । दोनों डाकमें डाल दिये । पत्रों में लिखा था कि,—अमुक दिन मेरी दीक्षा होनेवाली है । आप दीक्षा महोत्सव पर अवश्य पधारें ।

---

१ कठिन बात; २ हलहोना.

पत्र पाते ही खीमचंदभाई राधनपुर जानेको तैयार हो गये । हीराचंदभाईने उन्हें रवाना होते समय समझाया, देखना वहाँ कुछ गड़बड़ न करना । छगनको समझाना । यदि वह आवे तो ले आना न आवे तो उसकी मर्जी । खीमचंद भाई अपने साथ अपनी भूआ दीवाली बहिनको भी लेते गये । उस समय राधनपुर तक रेल नहीं थी । दूसरे स्टेशन पर उतरकर जाना पड़ता था । खीमचंदभाई जब रेलसे उतरे तो उस समय वहाँ उन्हें कोई गाड़ी आदि न मिले । आपने दीक्षाकी जो मिति लिखी थी उसमें दो दिन ही बाकी रह गये थे । तत्काल ही राधनपुर पहुँचना खीमचंदभाईके लिए जरूरी था । इसलिए ऊँट पर ही सवारी करके राधनपुर पहुँचे । क्योंकि उस समय वही मिला था । कभी ऊँट पर चढ़े न थे इसलिए उन्हें रास्तेमें बड़ी तकलीफ हुई ।

राधनपुरमें ऊँटसे उतरते ही खीमचंदभाई सीधे स्वर्गीय महाराज साहबके पास पहुँचे; चरणवंदना की हमारे चरित्र नायकका पत्र सामने रक्खा और संक्षेपमें सब हाल कहा । कहते कहते वे रो पड़े,—“महाराज साहब मेरा छगन मुझे दे दीजिए ।” मोह कैसा प्रबल होता है ! सांसारिक संबंध कितने सुदृढ होते हैं ! धन्य हैं वे नर जो मोहममत्वका त्याग कर आत्मकल्याणमें लगते हैं ।

आचार्यश्रीने खीमचंदभाईको समझाकर ढारस बँधाया ।

इतनेहीमें सीरचंदभाई, मोहनलाल पारख, गोड़ीदासभाई आदि कुछ राधनपुरके मुखियालोग आगये। उन्होंने भी खीमचंदभाईको धीरज दिया और कहा:-" हमारे घर चलो स्नान पूजा करके जीमो फिर शान्तिसे बातें करना। यहाँ तो कोई दीक्षाकी बात तक नहीं जानता। राधनपुर जैसे शहरमें भी दीक्षा क्या चुपचाप ही होगी? जब होगी तब बड़ी धूमके साथ। महोत्सव करने-वाले तो हम लोग ही हैं।"

खीमचंदभाईने आपकी चिट्ठी सबको दिखाई और कहा:-" देखिए यह छगनकी चिट्ठी है।"

आत्मारामजी महाराजने फर्माया:-" खीमचंदभाई, तुम्हें हमारा विश्वास है या नहीं?"

खीमचंदभाई बोले:-" महाराज! आपके वचनोंपर मुझे पूरा विश्वास है। आप उन साधुओंमेंसे नहीं हैं जो छोकरोंको बहकाकर भगा देते हैं और फिर चुपकेसे दीक्षा दे देते हैं। मगर मुझे यह विचार आता है कि, आपने सूचना न दी और छगनने दीक्षाकी सूचना क्यों दी?"

आचार्यश्रीने फ़र्माया:-" भोले! इस चिट्ठीमें दीक्षाका जो दिन लिखा है वह मुहूर्त्तका हो ही नहीं सकता। मीनार्कमें कहीं दीक्षा हुआ करती है? जान पड़ता है छगनहीने अपने मनसे यह चिट्ठी लिख दी है। अच्छा बुलाओ छगनको!"

आप बुलाये गये । आप आचार्यश्रीके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये । महाराजने पूछाः—" पत्रकी क्या बाता है ? "

आप नम्रता पूर्वक बोलेः—" कृपानाथ ! अपराध क्षमा कीजिए । मुझे यह विश्वास हो गया था कि, जबतक खीमचंद-भाईकी तरफ़से सफ़ाई न हो जाय तबतक आपके चरणोंमें अर्ज़ करना फिजूल है । कारण,—आप खीमचंदभाईको फ़र्मा चुके हैं कि, जबतक तुम इजाजत न दोगे हम छगनको दीक्षा न देंगे । खीमचंदभाई आपके इस वचनपर निश्चिन्त होकर बैठे हैं । उन्होंने सोच लिया है कि, न मैं इजाजत दूँगा और न महा-राज साहब दीक्षा देंगे । ऐसी हालतमें छगन व्याकुल होकर आप ही घर आजायगा । "

इसबातको सुनकर खीमचंदभाई सहित सभी हँस पड़े । आचार्य महाराज भी मुस्कुराये और बोलेः—" तो खीमचंद-अब तुझे इजाजत दे देंगे ? "

आपबोले.—" कृपालो !

स्थानंप्रधानं न बलप्रधानं ।

गरज बुरी बला है । गरज मुझे है खीमचंदभाईको नहीं । मैंने सोचा,—खीमचंदभाई अपने आप तो फैसला करेंगे नहीं, इसलिए मैंने ही फैसला करा लेना स्थिर किया । बड़ोदेमें ये अपनी इच्छानुसार कर सकते थे । इसलिये मैंने इन्हें यहाँ बुलानेकी तरकीब सोची । मुझे विश्वास था कि आपके सामने खीमचंदभाई-

की सोई हुई आत्मा जरूर जागृत होगी और फैसला मेरे हक़में होगा। बड़ोदेमें तो इन पर अनेक पानी चढ़ानेवाले हैं मगर आपके क़दमोंमें पहुँच कर तो चढ़ा हुआ पानी भी उतर जायगा। इसी लिए आपको न बताकर इनके पास पत्र भेज दिया। पत्रकी रजिस्ट्री इसलिए करा दी थी कि, यहाँ आ जायँगे तो ठीक ही है वरना ये फिर यह बहाना न कर सकेंगे कि मुझे पत्र मिला ही नहीं। अच्छा हुआ कि ये आ गये। अगर न आते तो मैं आपसे अर्ज करता कि,—मैंने इस तरहका पत्र भेजा है, मगर वे नहीं आये। न कुछ लिखा ही। इसलिए उनका मौनावलंबन ही एक तरहकी इजाजत है। कहा है कि—

'नानुषिद्धमनुमतम्।'

इसलिए आप मुझे दीक्षा दे दीजिए। मैंने यह भी स्थिर कर लिया था कि, यदि आप मेरी प्रार्थना अस्वीकार करेंगे तो मैं श्रीसंपतविजयजी[१] महाराजकी तरह दीक्षित होजाऊँगा।"

१. शान्तमूर्ति मुनिमहाराजश्री १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके परम भक्त सुशिष्य पन्यासजी महाराज श्रीसंपतविजयजी पाटनके रहनेवाले थे। इनका गृहस्थ नाम वाडीलाल था। ये अपनी माता आदिको समझा कर दीक्षा लेनेको उद्यत हुए। बड़ोदेमें दीक्षा महोत्सव होना स्थिर हुआ। किसीके बहकानेसे इनकी माताने दीक्षामें रुकावट डाल दी। इन्होंने माताको समझा दिया कि अच्छा मैं दीक्षा न लूँगा। माता घर चली गई। इन्हें मालूम था कि, माताकी इजाजतके बिना हंसविजयजी महाराज हरगिज दीक्षा न देंगे। कारण आत्मारामजी महा-

महाराज साहबने खीमचंदभाईसे कहा:—" क्यों भाई सुन लिया ? देखो तुम भी श्रावक हो। तुम्हें कुछ सोच विचार कर लेना चाहिए।

' अति सर्वत्र वर्जयेत् । '

किसी बातका अन्त लेना अच्छा नहीं होता। इसने अपनी अन्तिम इच्छा भी प्रकट कर दी है। क्या अब भी तुम सोचते हो कि यह वापिस घर जायगा ? "

सीरीचंद सेठ बीचहीमें बोल उठे:—" कृपानाथ ! अभी इन्हें भोजनादिसे निश्चिन्त हो लेने दीजिए बादमें शान्तिके साथ सब कुछ निश्चित किया जायगा। उठिए खीमचंद सेठ ! भोजनके लिए चालिए। "

खीमचंदभाई बोले:—" छगनको भी साथमें ले चलो। आज दोनों भाई साथ ही भोजन करेंगे। "

आपने कहा:—" आज चतुर्दशी है। मेरे उपवास है। मैं आकर क्या करूँगा ? "

खीमचंदभाई बोले:—" कुछ खाना मत। मेरे सामने बैठा ही रहना। मुझे संतोष होगा। "

राजके सिंघाड़ेका यही दस्तूर है। इसलिए आप कुछ दिनके बाद मातर गाँवमें गये और वहीं आपने सच्चे देव श्रीसुमतिनाथ स्वामीके सामने मुनिवेष धारण कर लिया। माताको समाचार मिले। वह दुखी होती हुई आई और इन्हें दीक्षा लेनेकी इजाजत दे दी। तब गुरुमहाराजने इन्हें संस्कारोंद्वारा अपनाया।

आपने कहाः—" अच्छी बात है। चलिए मैं तैयार हूँ।"

सब उठे। अपने अपने घर गये। आप भाईके साथ पारख मोहन टोकरसीके घर गये। खीमचंदभाईने स्नान पूजन करके भोजन किया। दोनों भाई एक जगह बैठकर बातें करने लगे। खीमचंदभाई बोलेः—" मैं समझ गया कि तू करेगा अपना धारा ही। मगर छः सात महीने और ठहर जा। चौमासे बाद खुशीसे दीक्षा ले लेना।"

आपने कहाः—" छः सात महीने ही क्यों मैं तो छः सात बरस ठहर सकता हूँ। मगर आप मुझे इस बातका निश्चय करा दीजिए कि मैं इन छः सात महीनोंमें मरूँगा नहीं।"

खीमचंद०—" क्या मुझे भविष्यका ज्ञान है सो मैं निश्चय करा सकूँ?"

आप—" जब आप मुझे यह निश्चय नहीं करा सकते हैं तब मैं कैसे आपके कहनेसे अपना स्वार्थ-आत्मलाभ-बिगाड़ दूँ?"

'स्वार्थ भ्रंशो हि मूर्खता।'

मैं तो अब देर न करूँगा। यदि कालने अचानक ही आ दबाया तो मेरे मनोरथ मनमें ही रह जायँगे।

काल करंतो आज कर, आज करंतो अब्ब।
पलमें परले होयगी, फेर करेगो कब्ब॥

मैं अब देर करना नहीं चाहता। कालका कुछ भरोसा नहीं। आप कृपा करके आज्ञा दे दीजिए। इतना ही नहीं आप अगुवा बनकर मुझे दीक्षा दिला दीजिए। आपने अहम-

दाबादमें गुरु महाराजसे कहा भी था कि,—थोड़े समयतक आप इसको अपने पास रखकर पढ़ाइए; फिर समय आनेपर मैं खुद ही इसको दीक्षा दिला दूँगा । मैं. समझता हूँ आप यह बात अबतक भूले न होंगे ? महाराज साहबने अपने वचनानुसार अबतक मेरी दीक्षाका नाम भी नहीं लिया है । अब समय आ गया है कि, आप अपना वचन पालिए और अपनी धर्मज्ञता और उदारताका परिचय दीजिए । ”

पासहीमें भूआजी बैठी हुई थीं । वे बोलीं:—“ खीमा ! देख तो किस तरह बातोंके तड़ाके लगा रहा है ! है जरा भी लाज शरम ! आगे कभी तेरे सामने बोला भी था ? तू अब इसको घर ले जाकर क्या करेगा ? इससे क्या तेरा दरिद्र दूर होगा ? उठ ! चल अपने घर चलें । ”

आप तो यह चाहते ही थे कि, ये लोग राजीखुशी या नाराज होकर किसी भी तरहसे घर चले जायँ और आप अपने साध्यको सिद्ध करें—अपनी इच्छानुसार दीक्षा ले लें । इसलिए आप इस गीदड़भपकीका कुछ जवाब न देकर मौन रहे । कहा है—

‘ मौनं सर्वार्थसाधकम्[1] ’

थोड़ी देर सभी चुप एक दूसरेकी तरफ देखते रहे फिर आप उठ खड़े हुए और यह कहते हुए चले गये कि, प्रतिक्रम-

१ मौन सारे कामोंको सिद्ध करनेवाली है ।

णका समय हो गया, अब मैं जाता हूँ। भूआ भतीजे बैठे सलाह करते रहे कि, अब क्या करना है?

राधनपुरमें गोड़ीदासभाई अच्छे जानकार और धर्मके कामोंमें मुखिया समझे जाते थे। उस समय वहाँ जितनी इनकी बात मानी जाती थी उतनी साधु मुनिराजोंकी भी नहीं मानी जाती थी। आचार्य महाराजको, ये ही कई मुखियोंके साथ, माँडलसे विनती करके ले गये थे। इसलिए सारे राधनपुरमें अपूर्व उत्साह फैला हुआ था। इन्होंने खीमचंदभाईको समझाया, उत्साहित किया और कहाः—

"यह तो छगनकी बातोंसे निश्चित हो गया है कि, वह अब घर लौटकर न जायगा, चाहे तुम कुछ भी कर लो। तब व्यर्थ ही अन्तराय कर्म क्यों बाँधते हो? अपने हाथहीसे यह शुभ कार्य करके कस्तूरीकी दलाली क्यों नहीं लेते?"

खीमचंदभाईने जवाब दियाः—" गोड़ीदासभाई! मैं इन बातोंको समझता हूँ। आचार्य महाराज बड़ोदे पधारे तबसे मेरी परिणति भी बदल गई है। मैं धर्मको कुछ भी नहीं समझता था, मगर आचार्य महाराजकी कृपासे और छगनकी प्रवृत्तिसे मेरे हृदयमें भी धर्मभावनाएँ बढ़ती जा रही हैं; मगर वे इतनी नहीं बढ़ीं कि मैं अपनी दाहिनी भुजाको—अपने प्यारे भाईको साधु हो जाने दूँ।"

गोडी०—" तुम्हारा कहना सच है। दुनियामें मोह बड़ा ही जबर्दस्त है। सारा संसार ही मोहके आधीन है।

'पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्। '[1]

मगर मोहममत्वमें–माना हुआ संसारी सुख भी उस समय होता है जब दोनों तरफसे एकसा प्रेम हो–

'महोब्बतका मजा तब है, दोनों हों बेकरार,
दोनों तरफसे हो आग बराबर लगी हुई। '

मगर यहाँ तो उल्टा ही हिसाब है। तुम मेरा छगन मेरा छगन करते फिरते हो और छगन तुम्हारा भाव भी नहीं पूछता। तुम्हें छगनकी रट है और छगनको अपने स्वार्थकी–अपनी मुक्तिकी। ऐसी दशामें तुम मोह रखकर क्या करोगे? सिवा कर्मबंधनके तुम्हारे हाथ क्या आयगा?"

खीमचंदभाईके मनमें बड़ा द्वंद्व मचा हुआ था। उनकी तो ऐसी हालत हो रही थी,

'ठहरे बन आती है न भागे;
तेरी जबर्दस्ती के आगे!'

न छगन घर जानेको तैयार था न उनका मन छगनको दीक्षाकी आज्ञा देना चाहता था। जबर्दस्ती भी कहाँ तक की जाय? आखिर खीमचंदभाईके मोहका पर्दा हट गया। उनको संसार विस्तीर्ण दिखाई दिया। उन्हें साफ मालूम हुआ कि, छगन मेरे कुटुंबके घेरेमें रहनेके लिए नहीं जन्मा है। इसका दायरा बड़ा है। यह जनसमाजके लिए जन्मा है। इसका कुटुंब प्राणिमात्र है—

---

१ मोहरूपी मदिरा पीकर सारा संसार उन्मत–पागल–हो रहा है।

'मरना भला है उसका जो अपने लिए जिए।
जीता है वह जो मरचुका संसारके लिये॥'

मैं क्यों इसे अपने बंधनमें बाँधकर रखनेका यत्न करूँ? इससे हमारा कुटुंब उज्ज्वल होगा। गोड़ीदासभाईकी बातोंने खीमचंदभाईकी भावनाओंको दृढ बना दिया। वे कर्मबंधनकी दलालीके बदले धर्मके–मुक्तिके दलाल हो गये। वे बोलेः– "मैं आपका उपकार मानता हूँ कि, आपने मुझे यथार्थ बातें कहीं और मेरे मनको दृढ बनाया। इसी समय आचार्य महाराजके पास चलिए और मेरी ओरसे निवेदन कीजिए कि, छगनको दीक्षा दे दीजिए। मैं राजी हूँ। यदि कोई मुहूर्त पासहीमें आता हो तो मैं इसको दीक्षा दिलाकर ही जाऊँगा। मैं महाराज साहबसे ये बातें न कह सकूँगा। मेरा हृदय भर आयगा।"

गोड़ीदासभाई बोलेः–"अब तो रात बहुत चली गई है। ग्यारह बजे होंगे। महाराज साहब आराम करते होंगे। इस समय उनके आराममें खलल डालना अच्छा नहीं है। सवेरे चलेंगे।"

खीमचंदभाईनें कहाः–"महाराज साहबने अबतक आराम न फर्माया होगा। और यदि फर्माया ही होगा तो भी वे दयालु हैं, हमारे जानेका खयाल न करेंगे। मगर मैं इस खुशीकी खबरको महाराज साहबके कानोंतक पहुँचाये बगैर चैनसे न सो सकूँगा। इसलिए जल्दीसे महाराज साहबके

पास चलिए और बधाई दीजिए। फिर आप अपने घर चले जाइए, मैं यहाँ लौट आऊँगा । ”

मोहन पारख पासमें बैठे ऊँघ रहे थे । वे खीमचंदभाईकी न्यायसंगत बातें सुनकर प्रसन्न हुए और बोलेः—“गोड़ीदास-भाई ! खीमचंदभाई ठीक कह रहे हैं। तुम इनके साथ जाओ। मैं जेसंगको साथ भेजता हूँ। तुम फिर घर चले जाना और वह इन्हें यहाँ ले आयगा । ”

मोहन पारखका लड़का जेसंग लालटेन उठाकर आगे चला, और दोनों उसके पीछे । तीनों रत्नत्रयकी—ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी—दलाली करने उपाश्रयमें पहुँचे ।

आचार्य महाराज अभी ही लेटे थे। उनके कानोंमें त्रिकाल वंदनाकी आवाज पहुँची । आचार्य महाराजने धीरेसे पूछाः— “ श्रावकजी इस वक्त ? ”

गोड़ीदास बोलेः—“ कृपानाथ ! तकलीफ दी, माफ कीजिए। खीमचंदभाई कुछ जरूरी अर्ज करना चाहते हैं। इसलिए अभी हाजिर हुए हैं । ”

आचार्य महाराज उठ बैठे । तीनों सामने बैठ गये । संकेतानुसार गोड़ीदासभाईने सारी बातें कह सुनाई। सुनकर आचार्य महाराजने खीमचंदभाईको शाबाशी दी और कहाः—“ अच्छी बात है। तुम चाहते हो ऐसा ही होगा। अभी रात ज्यादा चली गई है। जाकर शान्तिसे आराम करो। सवेरे ज्योतिषीको बुलाकर तुम्हारे सामने ही मुहूर्त नकी कर लिया जायगा । ”

सब वंदना कर अपने अपने घर गये। आचार्य महाराजने भी आराम किया।

सवेरे ही आप प्रतिक्रमण कर आचार्य महाराजको वंदना करने गये। उनके चहरे पर प्रसन्नता थी। वे आपकी पीठपर हाथ फेरते हुए बोलेः–"ले बच्चा! तेरी मनोकामना पूरी होगई। रातको खीमचंदभाई आकर इजाजत दे गये हैं।"

यह सुनकर आपको जो आनंद हुआ उसका वर्णन करनेकी शक्ति इस लोहेकी कलममें कहाँ?

मुनि महाराज श्रीहर्षविजयजीको, आचार्य महाराजने फर्मायाः–"भाई! तेरे चेलेकी दीक्षाका मुहूर्त्त दिखलाना है। किसी श्रावकको कहकर जो ज्योतिषी श्रीसंघका काम करता हो उसे बुला लेनां।"

व्याख्यान हुआ। फिर भोजनके बाद शुभ चौघड़ियेमें एक श्रावक ज्योतिषीको ले आया। और श्रावक भी एकत्रित हो गये। श्रीसंघके नेताओंने खीमचंदभाईको अगुआ बनाकर शिष्टाचारपूर्वक ज्योतिषीसे मुहूर्त पूछा। ज्योतिषीने बहुत देर तक देखभाल करनेके बाद वैशाख सुदी त्रयोदशीका दिन दीक्षाके लिए शुभ बताया। लग्नकुण्डली भी उसने उसी समय बना डाली। वह बोलाः–"यद्यपि खीमचंदभाई दीक्षाका मुहूर्त जल्दी चाहते हैं, मगर इससे जल्दी अच्छा मुहूर्त एक भी नहीं है। इस मुहूर्तमें जो व्यक्ति दीक्षित होगा उसे संसारमें

यश मिलेगा, लाखों लोग उसे पूजेंगे और वह किसी उच्च पदको प्राप्त करेगा । ”

आचार्यश्रीने भी कुंडली देखी और कहाः—“ ज्योतिषीजी-का कहना वास्तवमें सत्य है । क्यों खीमचंदभाई तुम क्या कहते हो ? ”

खीमचंदभाई बोलेः—“ आपकी समझमें जो बात ठीक जँचे वही कीजिए । चार दिन बादका मुहूर्त्त हो तो कोई हर्ज नहीं मगर होना चाहिए वह बहुत बढ़िया । जब आप, ज्योतिषीजी और अमीचंदजी इसीको ठीक समझते हैं तो यही रहने दीजिए । मगर खेद है कि मैं इससे लाभ न उठा सकूँगा । करीब एक महीनेका अन्तर है और मेरे पास सरकारी ठेका है, इसलिए इतने समयतक मैं यहाँ नहीं रह सकता । समय आनेपर आप खुशीसे दीक्षा दीजिए । यदि मौका मिलेगा और सरकारसे छुट्टी पासकूँगा तो उस समय जरूर आऊँगा । मैंने कुछ अनु-चित व्यवहार किया हो; मन, वचन या कायसे मैंने किसी तरहकी आपको तकलीफ दी हो; आपका मन दुखाया हो तो उसके लिए आप मुझे क्षमा करें । मैं अज्ञानी हूँ । मेरी बातोंका खयाल न करें । ”

खीमचंदभाईका हृदय भर आया । उन्होंने महाराज साह-बके चरण पकड़ लिए । आचार्यश्रीने उन्हें उठाया और मधुर शब्दोंमें कहाः—“ खीमचंदभाई ! तुमने बहुत बहादुरीका काम किया है । तुम निकट भव्य जीव हो । मैंने कइयोंको दीक्षा दी

है, मगर यह पहला ही अवसर है कि दीक्षा लेनेवालेको इस तरह आनंद और उत्साहसे आज्ञा मिली हो। तुमने शास्त्रोंके वचनोंको सत्य कर दिखाया है। तुम्हारा भाई होनहार है। उससे जैनधर्मकी प्रभावना होगी।"

खीमचंदभाईने नम्रतासे कहाः—" गुरुदेव ! मैं यही चाहता हूँ कि, आपकी वाणी सफल हो। मैं अपना प्यारा भाई,— अपनी दाहिनी भुजा आपकी रक्षामें छोड़ता हूँ। उसे आप सदा अपने चरणोंमें रक्खें; कभी उसको अलग न करें। वह बालक है। उसका कोई गुनाह हो जाय तो आप दयालु क्षमा कर दें।"

बोलते बोलते खीमचंदभाईकी आँखोंसे जल बह चला। आह ! आज भाईको छोड़ते कितना दुःख खीमचंदभाईको हुआ होगा ? भगवान महावीरके समान अवतारी, पुरुषोंके ज्येष्ठ बंधु नंदीवर्द्धनके समान ज्ञानियोंका हृदय भी जब दृढ न रह सका तो खीमचंदभाईका हृदय उमड़ आया, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

फिर खीमचंदभाईने आपको छातीसे लगाया, आपके मस्तकको अश्रुजलसे अभिषिक्त किया ओर करुण कंठसे कहाः— " छगन ! भाई !" खीमचंदभाईका गला रुंध गया। हमारे चरित्रनायक भी आँसू न रोक सके। आह ! कैसा करूण दृश्य था ? जितने साधु और श्रावक वहाँ मौजूद थे सबकी आँखोंमें पानी था। आज भाई भाईसे जुदा होता है। सबके हृदयमें प्रश्न उठता है—" आज यदि हमारा भाई भी हमसे जुदा होता तो हमारी क्या हालत होती ? "

आँसू हृदयको हल्का करने की एक अमोघ ओषधि है । जब खीमचंदभाई बहुत आँसू बहा चुके तब उनका मन स्थिर हुआ और वे बोले:-" प्यारे भाई ! देखना जिस उत्साहसे आज दीक्षा लेनेको तैयार हुआ है वह उत्साह कभी ठंडा न पड़े । सदा शुद्ध चरित्र रखना । संयम पालनेमें शिथिलता न करना । कोई ऐसा काम न करना जिससे गुरुके या पिताके नामपर कलंक लगे । सदा गुरु महाराजकी आज्ञामें रहना और धर्मसेवा कर शासनको देदीप्यमान करना । "

आपने अपने भाईकी पदरज सिरपर लगाई और कहा:- " दादा ! आपके आशीर्वादसे मेरा उत्साह कभी शिथिल न होगा । मैंने आपको कष्ट पहुँचाया है इसके लिए मुझे क्षमा करें । "

खीमचंदभाईने एक बार और छगनको छातीसे लगाया । और हमेशाके लिए छगनको-छगन नामको विदा कर दिया । फिर वे साधुमंडलीको वंदना कर वहाँसे रवाना हुए । चलते समय खीमचंदभाईने कुछ रकम पारख मोहन टोकरसीको दी और कहा:-" सेठ ! यदि संभव होगा तो मैं दीक्षाके मौकेपर आजाऊँगा अन्यथा मेरी यह थोड़ीसी भेट दीक्षा महोत्सवमें शामिल करलेना । "

खीमचंदभाई बड़ोदे चले गये और दीक्षा महोत्सवपर न आसके ।

बड़ी धूमसे दीक्षाकी तैयारी हुई । एक महीने तक लगातार

शादीमें निकलते हैं वैसे जुलूस निकलते रहे। अन्तमें आपको वह धन मिला जिसको पाकर किसी वैभवकी जरूरत नहीं रहती; वह चावी मिली जिससे अनन्त सुखभंडारके ऊपर लगा हुआ कर्म-ताला खुल जाता है; वह साधन मिला जिससे जीवनके अनन्त अशान्त वातावरण शान्त हो जाते हैं; वह तरणी—नौका मिली जिससे कर्णधार—मल्लाहके विना ही जीव भवसागरसे पार हो जाता है,—अर्थात आपको सं० १९४४ के वैशाख सुदी १३ के दिन शुभ मुहूर्तमें सूरिजी महाराजने दीक्षा दे दी। आपका नाम 'वल्लभविजयी' रक्खा गया। आप स्वर्गीय हर्षविजयजी महाराजके शिष्य हुए। जिस दिन आपने संयम लिया उस दिन आपको ऐसी प्रसन्नता हुई मानों दरिद्रको चिन्तामणि रत्न मिल गया; मानों वरसोंसे तपस्या करते हुए तपस्वीको आत्म साक्षात्कार हो गया।

दीक्षा लेनेके वाद आपका (सं० १९४४ का) पहला चातुर्मास राधनपुरहीमें सूरिजी महाराजके साथ हुआ। यहाँ आप चंद्रिका पूर्वार्द्ध तक ही पढ़ सके। कारण—कुछ अरसे तक तो आपको अपने समयका वहुत वड़ा भाग, साधुधर्मसे सम्वंध रखने वाली, ग्रहणशिक्षा और आसेवन शिक्षा रूप क्रियाएँ, सीखनेमें देना पड़ता था; फिर पं. अमीचंद्रजी अपने किसी खास कामके सवव अपने घर पंजावमें चले गये थे।

चातुर्मास समाप्त हुआ। आपने वहाँसे आचार्यमहाराज और अपने गुरु महाराजके साथ विहार किया। श्रीसंखेश्वरा

पार्श्वनाथकी यात्रा कर आपने अपने हृदयको पवित्र किया।
वहाँसे अहमदाबादके लिए रवाना हुए। मार्गमें जब मांडल पहुँचे
तब खीमचंदभाई सपरिवार वहाँ आपके दर्शनार्थ आपहुँचे।
जीवनका कैसा विचित्र परिवर्तन हो जाता है? पूज्य पूजक,
सेव्य सेवक भावनामें कैसे फरक आ जाता है? दोनों
सांसारिक भाइयोंकी भेट इसका बहुत ही बढ़िया उदाहरण
है। कुछ ही महीनों पहले जिनकी पदरज आप मस्तक पर
चढ़ाते थे वे ही आज आपकी पदधूलि लेकर अपनेको धन्य
मानने लगे। कुछ महीनों पहले जो आपको उपदेश देते थे
उन्हींको आज आप उपदेश देते थे।

आपके सांसारिक कुटुंबने सबसे पहले यहीं अपने कुलरत्नके
दर्शन किये। समस्त कुटुंब वंदना कर सामने बैठ गया और
बाल साधुके दर्शन करने लगा। आपकी बहिन, भोजाई और
आपके भाई आदिकी आँखोंमें प्रेमाश्रु थे। जिस सिरको वे
बालोंसे सुशोभित बढ़िया टोपीसे ढका देखते थे, वही
सिर आज केश-रिक्त घोट मोट है। जिस शरीरको वे
सुंदर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित कर प्रसन्न होते थे वही
शरीर आज एक कपड़ेसे ढका हुआ शीतल वायुका क्रीडाक्षेत्र
हो रहा है। जो पैर जुराबों और बूटोंसे सदा सुरक्षित रहते
थे वे ही आज सर्दी के मारे फट गये हैं। आह! ऐसा दुःख
मय जीवन यह सुकुमार कैसे बितायगा? मगर इस बातका
उन्हें संतोष भी था कि, उनके कुलमें एक ऐसा सुपूत भी

जन्मा है जिसने 'वसुधैव कुटुंबकम्' कहावतको चरितार्थ किया है।

मॉंडलसे विहार करके आप श्रीसूरिजी महाराज़के साथ अहमदावाद पधारे। श्री सूरिजी महाराजकी आँखोंमें मोतिया हो गया था। उसे निकलवानेके लिए कुछ अधिक समयतक यहाँ रहना पड़ा।

\+ \+ \+ \+

(सं० १९४५ से सं० १९५० तक)

श्रीसूरिजी महाराज अहमदावादसे विहार करके महेसाना पधारे और सं० १९४५ का चौमासा वहीं किया। सूरिजी महाराजके साथ ही हमारे चरित्रनायकका भी दूसरा चौमासा वहीं हुआ। उस चौमासेमें डॉ. ए. एफ. रुडॉल्फ हार्नलके साथ, अहमदावाद निवासी सेठ मगनलाल दलपत भाईकी मारफत, पत्रव्यवहार शुरू हुआ। ये डॉक्टर रॉयल एशियाटिक सोसायटीके एक चुनंदा कार्यकर्त्ता थे। पाठकोंको यह मालूम है कि, श्रीसूरिजी महाराजके पत्रव्यवहारका काम प्राइवेट सेक्रेटरीकी तरह, दीक्षा होनेके पहलेहीसे, आपको पालीतानेमें मिल गया था। वह काम उस समय भी आपही करते थे। डॉक्टर महाशयके जो प्रश्न आते थे उनके उत्तर पेन्सिलसे लिख कर श्रीसूरिजी महाराज आपको दे देते थे। आप उसकी स्याहीसे सुंदर अक्षरोंमें नकल कर देते थे।

जहाँ जहाँ सूत्रोंके पाठ आते थे वहाँ वहाँ श्री सूरिजी महाराज सूत्रोंके अध्याय और श्लोकोंकी संख्या लिख दिया करते थे। आप सूत्रोंमेंसे उनकी नकल कर लिया करते थे। इस काममें आपका वहुतसा समय चला जाता था, इसलिए आप वहाँपर व्याकरण विशेष रूपसे अध्ययन न कर सके; परन्तु गीतार्थ गुरु श्रीसूरिजी महाराजके चरणोंमें रहनेसे और उनकी आज्ञानुसार कार्य करनेसे सैधांतिक वहुतसा अपूर्व ज्ञान आपको प्राप्त हुआ। गुरुचरणोंमें रहनेका यही तो शुभ फल है। श्रीहरिभद्रसूरि महाराज पंचाशकजीमें फर्माते हैं—

नाणस्स होइ भागी, थिरयरओ दंसणे चरित्ते अ।
धन्ना आव कहा जे गुरुकुलवासं न मुंचंति॥

आपने इस उपदेशके अनुसार हमेशा आचरण किया। अर्थात् जबसे दीक्षित हुए तभीसे आप अपने गुरुमहाराज श्री १०८ श्री हर्षविजयजी महाराज और आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजकी छत्रछायामें रहे और उनकी सेवा भक्तिपूर्वक करते रहे। इतना ही क्यों दीक्षा लेनेके पहलेहीसे आप गुरुभक्ति करते रहे। इसका फल यह हुआ कि, गुरुमहाराजने आपको ऊँचा उठाकर अपने बराबर बिठा लिया। अर्थात् आपको गुरुकृपासे और गुरु आज्ञासे सं० १९८१ में लाहोरमें आचार्य पदवी प्राप्त

१ जो यावज्जीवन गुरुकुलवास नहीं छोड़ता है, वह ज्ञानका भागी होता है और उसके दर्शन तथा चारित्र स्थिरतर होते हैं।

हो गई। सच है भक्ति कभी निष्फल नहीं होती। इसी लिये तो श्री १००८ श्रीमानतुंगाचार्य महाराज, भगवान श्री आदिनाथकी स्तुति करते हुए भक्तामरके दसवें काव्यमें लिखते हैं ?—

नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवंतः
तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किंवा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

इस चौमासेहीमें आपको, यद्यपि व्यवहारसे नहीं तथापि निश्चय से,—आचार्यश्रीने पढ़ानेका काम करनेकी आज्ञा देकर, उपाध्याय पदवी प्रदान कर दी। इसलिए आपको अध्ययन करते हुए भी उपाध्यायका यानी अध्यापनका काम करना पड़ता था। झींझुवाड़ानिवासी दीपचंद भाई; दशाड़ानिवासी वर्द्धमानभाई, पाटननिवासी वाडीलालभाई और अहमदावादनिवासी मगन-लालभाई ये चारों सज्जन दीक्षालेनेकी अभिलाषासे श्रीसूरिजी महाराजके चरणोंमें उपस्थित हुए थे। इन्हें आप जीवविचार, नवतत्त्वादि प्रकरण और व्याकरण पढ़ाते थे। स्वयं इस प्रकार काममें लगे रहने पर भी आपने वृद्ध मुनिराज श्री १०८ श्री

१—हे नाथ ! हे जगत्के भूषण ! आपकी स्तुति करनेवाले-आपके भक्त-यदि आपके ही सत्य गुणोंसे आपके समान हो जाते हैं तो इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वह स्वामी किस कामका है जो अपनी संपत्तिसे निजाश्रितोंको अपने समान नहीं बना लेता है ?

प्रमोदविजयजी महाराज और मुनि महाराज श्री १०८ श्री अमरविजयजी महाराजके पाससे चंद्रिकाके उत्तरार्धका दसगणों पर्यंत अध्ययन कर लिया।

महेसानासे विहार करके श्रीसूरिजी महाराज वडनगर, विसनगर होते हुए श्रीतारंगाजी तीर्थकी यात्रा करनेके लिए खेरालु पहुँचे। यहाँ गोघानिवासी श्रीयुत मगनलाल भाई, दीक्षालेनेके इरादेसे आये। आचार्यश्रीने अगले चार विद्यार्थियोंके साथ इन्हें भी पढ़ानेके लिए आपको सौंप दिया। आप पाँचों विद्यार्थियोंको सस्नेह विद्या पढ़ाते रहे। आचार्यश्री तारंगाजीकी यात्रा करके विचरण करते और भक्तजनोंको उपदेशामृतका पान कराते हुए पालनपुर पहुँचे।

दीक्षालेनेके इच्छुक भव्य जीवोंको साथ देखकर पालनपुरके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे प्रार्थना की कि, इन भाग्यशालियोंको आप यहीं पर दीक्षा दें। हम लोग दीक्षामहोत्सव कर आनंद मनायँगे और अपने आपको धन्य मानेंगे। आचार्यश्रीने संघकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। दीक्षामहोत्सव हो रहा था। उसी समय दो सज्जन दीक्षा लेनेकी अभिलाषासे और आगये। एक थे लीमडीनिवासी श्रीयुत जयचंद भाई और दूसरे थे श्रीयुत अनंतराम। दूसरे स्थानकवासी साधुपनेका त्याग करके आये थे। यहाँ आचार्यश्रीने सात सज्जनोंको सात भयोंको मिटानेवाली दीक्षा दी। उनके नाम-(१) दीपचंदजीका श्रीचंद्रविजयजी (२) वर्द्धमानजीका श्रीशुभविजयजी (३) मगनलालजीका श्रीमो-

तीविजयजी (४) वाड़ीलालजीका श्रीलब्धिविजयजी (५) मगनलालजीका श्रीमानविजयजी (६) जयचंदजीका श्रीजसविजयजी (७) अनंतरामजीका श्रीरामविजयजी । प्रारंभके तीन १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराजके, चौथे १०८ श्रीहीरविजयजी महाराजके पाँचवें १०८ श्रीप्रेमविजयजी महाराजके, छठे, उस समय मुनि और इस समय आचार्य श्री १०८ श्रीविजयकमलसूरिजी महाराजके और सातवें १०८ श्रीसुमति विजयजी उर्फ़ स्वामीजी महाराजके शिष्य हुए।

पालनपुरसे विहार करके आचार्य महाराज पाली (मारवाड़) पधारे। आप भी आचार्यश्रीके साथ ही आबूजी पंचतीर्थी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए पाली पहुँचे। पंच तीर्थकी यात्रा करने जाते हुए मार्गमें वाली आता है। वहाँ रातको आपने ज़ुबानी ही उपदेश दिया और दूसरे दिन नाडलाईमें व्याख्यान वाँचा। श्रावकोंने आपके व्याख्यानोंको वहुत पसंद किया। ये ही दोनों स्थान हमारे चरित्रनायकके प्रथम—उपदेश स्थान हैं। पालीमें आचार्यश्री ने आपको एवं ज्ञानविजयजी, लब्धिविजयजी, मानविजयजी, शुभविजयजी, मोतीविजयजी और जशविजयजी ऐसे सात साधुओंको छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया अर्थात् वड़ी दीक्षा दी। यह दीक्षा सं० १९४६ के वैशाख सुदी १० या ११ को श्रीनवलखा पार्श्वनाथजीके मंदिरमें हुई थी।

योगोद्वहनकी क्रिया समाप्त होनेपर आचार्यश्री जोधपुर पधारे और आप अपने गुरुमहाराजके साथ पाली ही रहे। श्रीसूरिजी महाराजका चौमासा जोधपुरमें हुआ और आपका हुआ पालीमें। १०८ श्री हर्षविजयजी महाराजकी तबीअत उस समय खराब थी। इस लिए उनकी सेवा करनेके लिए किसी सेवापरायण साधुकी आवश्यकता थी। सूरिजी महाराज हमारे चरित्रनायकको इसके लिए सबसे ज्यादा योग्य समझकर अन्यान्य साधुओंके वहाँ होते हुए भी पाली ही छोड़ गये। इसलिए आपका सं० १९४६ का तीसरा चौमासा पालीमें हुआ। इस चौमासेमें कभी कभी आपको व्याख्यान भी बाँचना पड़ता था। पर्युषणमें तो आपहीको कल्पसूत्र बाँचना पड़ा था। यहीं आपने अपने गुरुमहाराजसे आत्मप्रबोध और कल्पसूत्रकी सुबोधिका टीकाका अध्ययन किया था। १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराज बड़े ही शान्त और अध्ययन करानेमें अथक परिश्रम करने करानेवाले सच्चे उपाध्याय थे। आचार्यश्री (आत्मारामजी महाराज) के एक भी साधु ऐसे न होंगे जिन्हें इन्होंने सूत्राध्ययन न कराया हो। ये उपाध्याय पदके न होते हुए भी वास्तविक उपाध्यायका काम करते थे।

आप पालीमें थे इसलिए आचार्यश्रीको पत्रव्यवहार और अन्य लेखन के काममें बहुतसी असुविधा हुई। जो जरूरी पत्र होते थे उनका जवाब आचार्यश्री ही लिख देते थे, बाकीके

मसौदे वनाकर पाली हमारे चरित्र नायकके पास भेज दिया करते थे। उनकी आप नकल कर आचार्यश्रीके पास लौटा देते थे। इसी वर्ष आचार्यश्रीको, डॉक्टर ए. एफ. रुडाल्फ हॉर्नेलके कहनेसे, गवर्नमेंटकी तरफसे ऋग्वेद भेटमें मिला था।

इस चौमासेमें आपने चंद्रिका समाप्त कर ली। थोड़ा अमर-कोश भी कंठ कर लिया। पालीके उपाश्रयमें एक ज्योतिर्विद् रहते थे। उनका नाम था अमरदत्त। जातिके पुष्करणा ब्राह्मण थे। हमारे चरित्रनायकने उनसे थोड़ा ज्योतिषका अभ्यास भी किया था।

चौमासा बीतनेपर आप अपने गुरुमहाराजके साथ पालीसे विहार करके ब्यावर होते हुए अजमेर पहुचे। आचार्यश्री भी जोधपुरसे विहारकर कापरड़ा तीर्थकी यात्रा करते हुए अजमेर पधारे। कापरड़ा तीर्थकी उस समयकी हालतमें और इस समयकी दशामें जमीन आसमानका अंतर है। उस समय इस तीर्थ स्थानकी दशा खराब हो रही थी, मगर आज वह वर्त्तमान आचार्य श्री १००८ विजयनेमि सूरिजी महाराजकी कृपासे चमन हो रहा है।

अजमेरमें उस समय आचार्यश्रीके साथ (१) मुनिमहाराज श्रीकुमुदविजयजी उर्फ छोटेमहाराज (२) मुनि महाराज श्रीकुशलविजयजी उर्फ बावाजी महाराज (३) मुनि महाराज श्रीहर्षविजयी प्रसिद्ध नाम भाईजी महाराज (४) मुनि

महाराज श्रीहीरविजयजी (५) मुनि महाराज श्रीकमल विजयजी (६) मुनि महाराज श्रीसुमतिविजयजी प्रसिद्ध नाम स्वामीजी महाराज (७) मुनि महाराज श्रीअमरविजयजी, (८) मुनि महाराज श्रीप्रेमविजयजी (९) मुनि महाराज श्रीमाणिकविजयजी (१०) हमारे चरित्रनायक मुनि महाराज श्रीवल्लभविजयजी (११) मुनि महाराज श्रीज्ञान-विजयजी (१२) मुनि महाराज श्रीलब्धिविजयजी (१३) मुनि महाराज श्रीमानविजयजी (१४) मुनि महाराज श्रीजशविजयजी (१५) मुनिमहाराज श्रीशुभ-विजयजी तपस्वी, और (१६) मुनि महाराज श्रीमोती-विजयजी। इस तरह कुल सोलह साधु थे। अजमेर श्री-संघमें बड़ा उत्साह था। श्रीसंघने समवसरणकी रचना कराई और अठाई महोत्सवकर अपने आपको कृतकृत्य किया। आचार्यश्रीके साथ उपर्युक्त सभी साधुओंका एक ग्रूप लिया गया था। वह यहाँ दिया जाता है। इसमें आचार्य महारा-जके पीछे ज़ो साधु खड़े हैं उनमें तीनकी संख्यावाला फोटो हमारे चरित्र नायक का है। यही आपका साधु पर्यायका प्रथम दर्शन है। ग्रूपसे जुदा भी हमने यह फोटो दे दिया है।

अजमेरसे विहार करके आचार्यश्री सपरिवार जयपुर पधारे। वहाँ बड़ी धूमसे स्वागत हुआ। अठाई महोत्सवके कारण कुछ समयतक यहाँ आचार्यश्रीको ज्यादा ठहरना पड़ा। यहाँ श्रीहर्ष विजयजी महाराजकी तबीअत फिर खराब

होगई। इस लिए हमारे चरित्रनायक और अन्य कुछ साधु-ओंको उनकी सेवाके लिए आचार्यश्रीने वहीं छोड़ा और आपने जयपुरसे विहार किया।

श्रीहर्षविजयजी महाराजकी तबीअत सुधर जानेपर उन्होंने दिल्लीकी तरफ विहार किया। उस समय उनके साथ हमारे चरित्रनायक, श्रीशुभविजयजी और श्रीमोतीविजयजी थे। तीनों सेवा भक्ति करते हुए उन्हें आरामसे दिल्ली ले गये।

दिल्लीमें सभी आचार्य महाराजके साथ हो गये। मगर आचार्यश्रीको पंजाबमें जाना था और भाईजी महाराजकी तबीअत अभीतक अच्छी नहीं हुई थी। दिल्लीमें हकीमोंका इन्तजाम भी अच्छा था इसलिए उन्हें इलाज करानेके लिए वहीं छोड़ कुछ साधुओंको उनकी सेवा शुश्रूषाके लिए रख आचार्यश्रीने वहाँसे विहार किया। रवाना होते समय श्रीसू-रिजी महाराजने हमारे चरित्रनायकको—जो कि आयुमें उस समय सबसे छोटे थे और जिनपर उनकी खास कृपा भी थी—फर्मायाः—"दिल्लीमें अच्छे अच्छे हकीम हैं। यहीं तुम लोग भाईजीका इलाज कराना। इनकी सेवामें कमी न करना। ये आराम हो जायँ तब तुम हमसे आ मिलना। अपना चौमासा साथ ही होगा। यदि इनकी शारीरिक दुर्बल-ताके कारण यहीं चौमासा करना पड़ेगा तो भी कुछ हानि नहीं है। क्योंकि यहाँका श्रीसंघ तुम्हारी सेवा, भक्तिमें कुछ कमी नहीं करेगा। मैं जानता हूँ तुम तीनों ही (श्रीशुभविजयजी,

श्रीमोतीविजयजी और हमारे चरित्रनायक) इस देशसे अजान हो और बच्चे हो; मगर मुनि श्रीकमलविजयजी यहीं चौमासा करनेका इरादा रखते हैं। ये बड़े हैं और इस देशसे परिचित भी हैं इसलिए ये तुम्हारा खयाल रक्खेगें।"

आचार्यश्रीके विहारके बाद श्रीहर्षविजयजी महाराजकी व्याधि बढ़ गई। श्रावकोंने हकीम महमूदखाँ का:—जो दिल्लीहीमें नहीं बल्के सारे हिन्दुस्थानमें प्रख्यात थे—इलाज कराना प्रारंभ किया। हकीमजीने बड़े परिश्रमके साथ इलाज और मुनिराजोंने तनदेहीसे सेवा, शुश्रूषा की; मगर आईका उपाय क्या ? जीवनके टूटे हुए धागेको कौन जोड़ सकता है ? हकीम, डॉक्टर, वैद्य, यंत्र, मंत्र, तंत्रादि कोई कुछ काम नहीं आता। भाईजी महाराजकी तबीअत बिगड़ती ही गई।

पालीमें श्रीहर्षविजयजी महाराजकी तबीअत एक यतिजीके इलाजसे सुधर गई थी इसलिए श्रीसंघ दिल्लीने उन्हें बुलाया। यतिजीने उन्हें भली प्रकार देख भाल कर कहा:—" दवा और वैद्य साध्य रोगीके लिए उपयोगी होते हैं असाध्यके लिए नहीं। असाध्य वह होता है जिसकी जीवनडोरी सर्वथा जर जर हो जाती है; जिसका टिक रहना असंभव हो जाता है। मैं अपनी साठ बरसकी उम्रके अनुभवसे कह सकता हूँ कि, अब इनका इलाज करना मानों राखमें घी उँडेलना है।"

जंडियाला गुरु (पंजाब) के वैद्य सुखदयालजी भी आचार्यश्रीके आदेशसे वहाँ आये थे। उनकी आयु करीब सत्तर वर्षके होगी। उन्होंने भी यही सलाह दी बल्के यहाँ तक कहा कि,–" मुझे गुरु महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि महाराजकी यह आज्ञा है कि:–यदि तुम्हारे ध्यानमें यह वात वैठ जाय कि साधु अब बचेंगे नहीं तो तुम तत्काल ही पासके साधुओंको सूचित कर दो, ताके वे लोग अपनी धार्मिक क्रियाओंका प्रबंध कर लें।" फिर उन्होंने हमारे चरित्रनायककी तरफ़ मुखातिब होकर कहाः–" मैं जानता हूँ, ये आपके गुरु हैं। आपको जरूर रंज होगा; मगर मैं भी इनका सेवक हूँ मुझे भी रंज होता है तो भी आपका तथा मेरा यह कर्तव्य है कि, हम इनका अन्त समय सुधरे वह काम करें। मेरी वातका विश्वास कीजिए कि, ये आजकी रात न निकालेंगे। यदि रात निकल गई तो कोई खतरा नहीं है।"

भाईजी महाराज इनकी वातें सुन रहे थे। वे वोलेः–" वल्लभ! सुखदयालजी और यतिजी ठीक कहते हैं। अब आखिरी समय आ पहुँचा है। मैंने मनमें संथारा (अभिग्रह) ले लिया है। तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो।" फिर उन्होंने विधिपूर्वक, आलोचना, निंदा, देववंदन, गुरुवंदन आदि किया; तब–' जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स देहस्स ' इत्यादि और–' चत्तारि मंगलं ' आदि पाठोच्चार द्वारा

चारों शरण धारण किये । ' खामेमि सव्वजीवे ' गाथा पढ़कर सबसे क्षमा प्रार्थना की और तब ' अरिहंतो मह देवो ' आदि गाथाको पढ़ते हुए पंचपरमेष्ठि नमस्कार मंत्रके ध्यानमें लीन हो गये । ऐसे लीन हुए कि, फिर वह ध्यान न टूटा । उनका जीवनहंस इस भौतिक—औदारिक शरीरका त्यागकर हमेशाके लिए चला गया । अर्थात् सं० १९४७ के चैत्र सुदी १० ता० २१-३-१८९० सोमवारके दिन १०८ श्रीहर्षविजयजी महाराजका स्वर्गवास हो गया । दिल्लीके श्रीसंघने दूसरे दिन यानी चैत्र शुक्ल ११ के दिन बड़ी धूम धामके साथ उनके शरीरका अग्निसंस्कार किया । दिल्लीमें लाल किलेके पास बाजा बजानेकी किसीको इजाजत नहीं है मगर उस दिन इजाजत मिल गई ।

जिस समय उनका स्वर्गवास हुआ उस समय उनके पास मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी, मुनिमहाराज श्रीशान्तिविजयजी, मुनिमहाराज श्रीअमरविजयजी, मुनि महाराज श्री माणिकविजयजी, हमारे चरित्रनायक, मुनि श्रीशुभविजयजी तपस्वी, मुनि श्रीमोतीविजयजी, मुनि श्रीलब्धिविजयजी और मुनि श्रीजशविजयजी मौजूद थे ।

गुरुवियोगका आपको कितना दुःख हुआ होगा उसे यह लोहेकी लेखनी कैसे बता सकती है ? यह अनुभव करनेकी बात है । हम केवल इतनाही लिख सकते हैं कि, असह्य दुःख हुआ होगा ।

अब दिल्लीमें रहना आपके लिए कठिन हो गया। आपने वहाँसे विहार करनेकी ठान ली। दिल्लीके श्रीसंघने चौमासा वहीं करनेकी विनती की। मुनि महाराज १०८ श्रीकमलविजयजी आदिने कहाः—"तुम किसी तरहकी चिन्ता न करो। हम तुम्हारे पढ़ने लिखनेका सब इन्तजाम कर देंगे। तुम्हें किसी तरहकी तकलीफ न होने देंगे।" मुनि महाराज १०८ श्री शान्ति विजयजीने कहाः—"मैं खुद तुम्हें जितनी देर चाहोगे उतनी देर पढ़ाऊँगा। तुम यहीं रहो।"

आपने कहाः—"आपकी मुझपर असीम कृपा है कि, आप मुझे अपने पास रखना चाहते हैं। मुझे इस बातका फख्र है और मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ। मगर मेरा अन्तरात्मा कहता है कि, मुझे गुरुचरणों या आचार्यश्रीके चरणोंके सिवा अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं मिलेगी। गुरुचरण तो अब असंभव होगये हैं अतः श्रीआचार्य महाराजके चरणोंमें जाकर ही रहूँगा।"

आपने अपने दोनों सतीर्थी-गुरु भाई श्रीशुभविजयजी और श्री मोती विजयजीको साथ लेकर दिल्लीसे पंजाबकी तरफ विहार किया।

तीनों इस देशसे अपरिचित थे। इस लिए बड़ी सड़क पर चल पड़े और क्रमशः अंबाले शहरमें जा पहुँचे। जब आपने सुना कि, आचार्यश्री छावनीमें पधार गये हैं तब आप सामने गये और भेट होने पर आचार्यश्रीके चरणोंमें

गिरकर रोने लगे । आचार्यश्रीने आपको हाथ पकड़कर उठाया और धीरज बँधाया–" क्यों इतना दुखी होता है? जो भावी ज्ञानी महाराजने ज्ञानमें देखा था वह हो गया । "

आप बोलेः—" अब आप मुझे कभी अपने चरणोंसे दूर न करें । "

आचार्यश्रीने प्यारसे पीठ पर हाथ फेरते हुए कहाः— " चिन्ता न कर जैसा तू चाहेगा वैसा ही होगा । "

आचार्यश्री छावणीसे विहार कर अंबाला शहरमें पधारे । कई वर्षोंके बाद पुनरागमन होनेसे, पंजाबके सभी शहरोंके लोग आचार्यश्रीके दर्शनार्थ आने लगे । श्रीसूरिजी महाराजके साथ उस समय पन्द्रह साधु थे । (१) श्रीकुमुदविजयजी महाराज (२) श्रीचारित्रविजयजी महाराज (३) श्रीकुसलविजयजी महाराज (४) श्रीहीरविजयजी महाराज (५) श्रीउद्योतविजयजी महाराज (६) श्रीसुमतिविजयजी महाराज (७) श्रीसुंदरविजयजी महाराज (८) श्रीअमरविजयीमहाराज (९) श्रीमाणिक विजयजी महाराज (१०) हमारे चरित्रनायक (११) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (१२) श्रीशुभविजयजी महाराज (१३) श्रीमोतीविजयजी महाराज (१४) श्रीभक्तिविजयजी महाराज और (१५) श्रीरामविजयजी महाराज ।

वाहरसे आनेवाले श्रावकोंकी दृष्टि हमारे चरित्रनायककी तरफ अवश्य आकर्षित होती थी । इसका कारण यह था

कि,—एक तो आपकी आयु सबसे छोटी थी। अभी मुँहपर मूँछकी रेखाएँ भी नहीं उठी थीं; दूसरे जब वे देखते तभी आप उन्हें, आचार्य महाराजके पास बैठे कुछ पढ़ते, लिखते तत्वान्वेषण करते या आचार्यश्रीको गुजरातीका अखबार सुनाते नजर आते थे। एक दिन श्रावकोंने आचार्यश्रीसे पूछाः—"ये छोटे महाराज क्या पढ़ते हैं?" आचार्यश्रीने मुस्कराकर फर्माया,—"पंजाबकी रक्षा" सुनकर श्रावक एक दूसरेका मुँह देखने लगे। तब आचार्यश्रीने कहाः—"मैं इसको पंजाबके लिए तैयार करता हूँ। मुझे विश्वास है कि, यह यथाशक्ति जरूर पंजाबकी रक्षा करेगा।"

पंजाबका श्रीसंघ उसी दिनसे आपके प्रति विशेषरूपसे भक्तिभाव रखने लगा। वह उत्तरोत्तर बढ़ता गया और बढ़ता ही जा रहा है।

उस समय पंजाबमें स्थानकवासी साध्वी श्रीपार्वतीजीकी अच्छी प्रसिद्धि हो रही थी। उन्होंने ज्ञान दीपिका नामकी एक पुस्तक लिखी। उसमें कई बेसिरपैरकी बातें लिख डाली थीं। हमारे चरित्रनायकने उसके उत्तर स्वरूप गप्पदीपिका समीर नामकी पुस्तक तैयार की। यह आपकी प्रथम बाल-रचना और गुरुकृपाका फल थी।

अंबालेके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे वहीं चौमासा करनेकी प्रार्थना की, मगर सूरिजी महाराजने मालेरकोटलामें चौमासा करनेकी इच्छा प्रकट की। इस पर अन्य साधुओंके लिए

आचार्यश्रीसे प्रार्थना की गई। आचार्यश्रीने श्रीचारित्रविजयजी महाराज आदि कुछ साधुओंको वहीं चौमासा करनेकी आज्ञाकर लुधियानाकी तरफ विहार किया। बड़े समारोहके साथ लुधियानाके श्रीसंघने आचार्यश्रीका नगर प्रवेश कराया। आचार्यश्रीने लुधियानाके श्रीसंघको उपदेशामृत पान कराकर निहाल किया। वहाँके श्रीसंघकी प्रार्थनाको स्वीकार कर आचार्यश्रीने मुनि श्रीउद्योतविजयजी महराज, मुनि श्रीसुंदरविजयजी महाराज आदि साधुओंको वहीं चौमासा करनेकी आज्ञा दी।

आपके बड़े गुरुभाई मुनि श्रीप्रेमविजयजी महाराज, किसी कारण वश, भाईजी महाराजके स्वर्गारोहणके पहिले ही, दिल्लीसे विहार कर पंजाबमें चले आये थे। यहाँ उनके साथ हमारे चरित्रनायककी भेट हुई। आपने अपने तीनों गुरु भाइयोंसे सलाह करके आचार्यश्रीसे अर्ज की कि, हम स्वर्गीय गुरुमहाराजके नामका एक ज्ञानभंडार यहाँ स्थापित कराना चाहते हैं। आचार्यश्रीने प्रसन्नतापूर्वक इजाजत दे दी। लुधियानेमें, 'श्रीहर्षविजयजी-ज्ञानभडारं' नामसे एक पुस्तकालय स्थापित हुआ जो पीछेसे आचार्यश्रीकी इच्छानुसार जंडियालागुरुमें पहुँचा दिया गया।

आचार्यश्री लुधियानासे विहारकर मालेरकोटला पधारे। सं० १९४७ का चातुर्मास वहीं किया। हमारे चरित्रनायकका यह चौथा चौमासा था। यहाँ आपने कुछ न्यायका भी अभ्यास किया। अमरकोष समाप्त किया और अभिधान

चिन्तामणि नाममालाका भी बहुतसा भाग कर लिया। आचार्यश्रीके पास दशवैकालिककी, श्रीहरिभद्रसूरिमहाराज विरचित बृहद्टीकाका और आचारप्रदीप शास्त्रका अभ्यास किया। उपाध्यायजी महाराज श्रीसमय सुंदरजी रचित दशवैकालिककी लघु टीकाका अभ्यास आप पहले ही पालीसे दिल्ली जाते हुए मार्गमें भाईजी महाराजके पाससे कर चुके थे।

चौमासेके व्याख्यानमें आचार्य महाराज विशेष आवश्यकमेंसे गणधरवाद और श्रीवासुपूज्यचरित्रका उपदेश फर्माते थे। उसको भी आप धारण करते जाते थे। आपमें गुरुगमता और प्रभावोत्पादक व्याख्यान देने का जो ढंग है वह आचार्यश्रीके निरंतर व्याख्यान–श्रवणका ही प्रभाव है। जबतक आचार्यश्री जीवित रहे और जब तक वे व्याख्यान देते रहे तबतक हमारे चरित्रनायकने कभी आचार्यश्रीके व्याख्यानोंका सुनना न छोड़ा। केवल दो चौमासोंमें आप आचार्यश्रीके व्याख्यान न सुन सके। एक बार आपका चौमासा पालीमें हुआ था तब, और दूसरी बार आपका चौमासा अंबालेमें हुआ था तब।

आजकल मुनिराज दीक्षा लेनेके पहले तक तो बड़े ध्यानसे व्याख्यान सुनते हैं; परन्तु दीक्षित हो जानेके बाद वे गुरुजनोंके व्याख्यान सुनना छोड़ देते हैं। वे सोचते हैं अब तो हम खुद ही उपदेशदाता हो गये हैं। अब हमें गुरुजनोंके व्याख्यान सुननेकी क्या आवश्यकता है? मगर वे यह नहीं

सोचते कि, व्याख्यानमें कभी कभी अपूर्व बातें आ जाया करती हैं; जिनका स्पष्टीकरण गुरुजन व्याख्याके समय ही किया करते हैं। अस्तु।

मालेरकोटलासे विहार कर आचार्यश्री रायकोट जगराँवा आदि स्थानोंमें होते हुए जीरा पधारे। एक मासकल्प वहीं विताया। वहाँसे विहारकर हरिकापत्तन–जहाँ विपासा (व्यास) और शतद्रु (सतलज) का संगम होता है–नौका द्वारा पारकर पट्टी पधारे। श्रीसंघने बड़े उत्साहके साथ आचार्यश्रीका स्वागत किया। आचार्यश्री उन्हें उपदेशामृत पिला निहाल करने लगे।

पट्टीके श्रीसंघने आचार्यश्रीसे सं० १९४८ का चौमासा वहीं करनेकी प्रार्थना की। आचार्यश्रीने श्रावकोंका उत्साह देख, क्षेत्रको उत्तम समझ, व्यवहारतया यह कहकर उनकी विनती स्वीकार ली कि, यदि ज्ञानीने क्षेत्रस्पर्शना देखी होगी तो समय पर विचार कर लिया जायगा।

पट्टीमें उत्तमचंद्रजी नामके एक वृद्ध विद्वान पंडित रहते थे। आचार्यश्रीकी आज्ञा पाकर आपने उनके पास पढ़ना प्रारंभ किया। पहले आपने चंद्रिकाके कठिन कठिन स्थलोंका स्पष्टीकरण कराया। उनकी विवेचन शैलीने आपको इतना आकर्षित किया कि आपने चंद्रिकाकी पुनरावृत्ति करनी शुरू कर दी। पंडितजी चंद्रिका पढ़ानेमें एक अद्वितीय विद्वान थे।

एक मासकल्प समाप्त होने पर आचार्यश्रीने कसूरकी तरफ़ विहार किया और हमारे चरित्रनायकको वहीं मुनि श्रीचरित्रविजयजी महाराजके साथ अध्ययनके लिए ठहरनेकी आज्ञा दी।

कसूरमें मासकल्प करके आचार्यश्री अमृतसर पधारे। हमारे चरित्रनायक भी श्रीचारित्रविजयजी महाराजके साथ विहारकर जंडियाला गुरुमें पधारे। यहाँ आपने एक नैयायिक पंडितसे न्यायवोधिनी और चंद्रोदय इन दो न्याय शास्त्रके ग्रंथोंका आध्ययन किया। कुछ दिनोंके वाद आचार्यश्री भी अमृतसरसे विहार कर वहीं पधार गये। वहाँ आपने और १०८ श्रीकमलविजयजी महाराजने सहाध्यायी होकर आचार्यश्रीके पास सम्यक्त्व सप्तिका पढ़ना शुरू किया।

कुछ समयके वाद आचार्यश्री अरनाथ स्वामीके मंदिरकी प्रतिष्ठा करनेके लिए अमृतसरमें पधारे। सं० १९४८ के वैशाख सुदी ६ के दिन बड़े समारोहके साथ प्रतिष्ठा हुई। हमारे चरित्रनायक भी आचार्यश्रीके साथ प्रतिष्ठा संबंधी कामोंमे लगे रहनेसे कुछ अध्ययन न कर सके। प्रतिष्ठाके वाद जंडियाला होकर प्रथम स्थिर किये हुए विचारके अनुसार आचार्यश्री पट्टीमें पधारे। सं० १९४८ का चौमासा वहीं किया। हमारे चरित्रनायकका पाँचवाँ चौमासा पट्टीहीमें हुआ। इस चौमासेमें आचार्यश्रीके साथ नौ साधु थे। (१) श्रीकुमुदविजयजी महाराज (२)

श्रीकुशलविजयजी महाराज (३) श्रीहीरविजयजी महाराज (४) श्रीकमलविजयजी महाराज (५) श्रीसुमतिविजयजी महाराज (६) हमारे चरित्रनायक (७) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (८) श्रीशुभविजयजी तपस्वी और (९) श्रीमोती विजयजी महाराज

इस चौमासेमें हमारे चरित्रनायकने 'चंद्रप्रभा' व्याकरण पंडित उत्तमचंद्रजीके पाससे पढ़ना शुरु किया । साथ ही उनसे कुछ ज्योतिष भी पढ़ते रहे। सहाध्यायी मुनि श्रीकमलविजयजी महाराजके अनुग्रहसे श्रीआवश्यक सूत्रका अध्ययन भी आचार्य श्रीकेचरणोंमें होता रहा।

वलाद जिला अहमदाबादके रईस श्रीयुत डायाभाई जो करीब नौ महीनेसे दीक्षा ग्रहण करने की इच्छासे आये हुए थे उन्हें सं० १९४८ के मार्गशीर्ष वदी ५ को आचार्यश्रीने दीक्षा दी। विवेकविजयजी नाम रक्खा। हमारे चरित्रनायकके यही पहले शिष्य हुए।

फिर पट्टीसे विहारकर आचार्यश्री सपरिवार जीरा पधारे। वहाँ सं० १९४८ के मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथजीकी प्रतिष्ठा तथा भरूचनिवासी परम श्रद्धालु, परम भक्त धर्मात्मा सेठ अनूपचंद मलूकचंद कई स्फटिकके जिनबिंब लाये थे उनकी अंजनशलाका कराई। आचार्य महाराज पहलेसे ही यह सोच चुके थे कि, वल्लभ विजयजी ही पंजाबकी सारसम्भाल लेंगे इसलिए इसको हरेक

कार्यसे जानकार बना देना चाहिए। तदनुसार प्रतिष्ठाकी और अंजनशलाकाकी सारी विधियाँ आचार्यश्रीने अपने सामने हमारे चरित्रनायकसे कराई।

प्रतिष्ठाके बाद आचार्यश्रीने होशियारपुरकी तरफ़ विहार किया; क्योंकि वहाँपर सं० १९४८ के माघ सुदी ५ के दिन लाला गुज्जरमलजीके बनाये हुए मंदिरमें श्रीवासुपूज्य स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करानी थी।

आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकको कुछ साधुओंके साथ पट्टी यह कहकर भेज दिया कि, तुम जाकर वहाँ अध्ययन करो। हम धीरे धीरे होशियारपुर पहुँचेंगे, तब तुम भी समयपर वहाँ आ पहुँचना। तदनुसार हमारे चरित्रनायक पट्टी चले गये। प्रतिष्ठाके समय आप होशियारपुर गये। वहाँ भी आचार्यश्रीकी अतुल कृपाके कारण आप प्रतिष्ठाके हरेक कार्यमें भाग लेते रहे।

होशियारपुरकी प्रतिष्ठाके समय आचार्यश्रीकी सेवामें अठाईस साधु मौजूद थे। (१) मुनि श्रीचंदनविजयजी महाराज (२) मुनि श्रीकुमुदविजयजी महाराज (छोटे महाराज) (३) मुनि श्रीचारित्रविजयजी महाराज (४) मुनि श्रीकुशलविजयजी (बावाजी महाराज) (५) मुनि श्रीहीरविजयजी महाराज (६) मुनि श्रीकमलविजयजी महाराज (७) मुनि श्रीउद्योतविजयजी महाराज (८) मुनि श्रीसुमतिविजयजी महाराज (स्वामीजी महाराज) (९)

मुनि श्रीवीरविजयजी महाराज (१०) मुनि श्रीकान्तिविजयजी महाराज (११) मुनि श्रीहंसविजयजी महाराज (१२) मुनि श्रीसुंदरविजयजी महाराज (१३) मुनि श्रीज्यविजयजी महाराज (१४) मुनि श्रीअमरविजयजी महाराज (१५) मुनि श्रीप्रेमविजयजी महाराज (१६) मुनि श्रीराजविजयजी महाराज (१७) मुनि श्रीसंपत्विजयजी महाराज (१८) मुनि श्रीमाणिकविजयजी महाराज (१९) हमारे चारित्रनायक (२०) श्रीलब्धिविजयजी महाराज (२१) श्रीमानविजयजीमहाराज (२२) श्रीजशविजयजी महाराज (२३) श्रीशुभविजयजी महाराज (२४) श्रीमोतीविजयजी महाराज (२५) श्रीदानविजयजी महाराज (२६) श्रीचतुरविजयजी महाराज (२७) श्रीभक्तिविजयजी महाराज और (२८) श्रीगौतमविजयजी महाराज।

संवत १९४९ का चौमासा आचार्यश्री होशियारपुरहीमें करनेका इरादा रखते थे; क्योंकि होशियारपुरहीके नहीं बल्के सारे पंजाबश्रीसंघके मुखिया लाला गुज्जरमलजी और लाला नत्थूमलजीकी साग्रह विनती थी। इसीलिए आचार्यश्रीने हमारे चरित्रनायकको मुनिश्रीवीरविजयजी महाराजके सिपुर्द करके उन्हें फर्माया—“ तुम चौमासा पट्टीमें करनेका इरादा रखना। कारण—वल्लभविजयका चंद्रप्रभा व्याकरणका अवशेष भाग समाप्त हो जायगा। तुम्हारे शिष्य दानविजय आदि भी वहाँ अच्छी तरह अध्ययन कर सकेंगे; क्योंकि

पंडित उत्तमचंद्रजी वहाँ एक बहुत अच्छे पंडित हैं।" श्रीवीर-विजयजी महाराजने सहर्ष इस बातको स्वीकार कर लिया।

श्रीवीरविजयजी महाराज हमारे चरित्रनायक आदिको साथ लेकर पट्टी गये। मगर वहाँ मालूम हुआ कि, पंडित उत्तमचंदजी किसी कार्यके लिए बाहर गये हुए हैं और उनके शीघ्र ही लौट आनेकी कोई आशा भी नहीं है। अतः पट्टीमें विशेष न ठहरकर आप श्रीवीरविजयजी महाराजके साथ अमृ-तसर पधारे। यहाँ पंडित कर्मचंदजीके पास आपने अवशिष्ट चंद्रप्रभाका पाठ शुरू किया श्रीदानविजयजी महाराजने भी चंद्रिकाका उत्तरार्ध अध्ययन करना प्रारंभ किया। पं० कर्म-चंद्रजी अच्छे व्युत्पन्न और बुद्धिवान् थे और पदार्थको अच्छी तरह समझाते थे। वे स्वयं भी विशेष अध्ययन करनेके तीव्र अभिलाषी थे इसलिए थोड़े ही दिनों बाद वे बनारस चले गये। अमृतसरके श्रावकोंने तलाश करके पंडित बिहारीलालजीका योग मिला दिया। उनके पास आपने न्यायमुक्तावलीका अ-ध्ययन प्रारंभ किया। थोड़े दिनों बाद वे किसी आवश्यक कार्यसे अपने घर चले गये।

उन्हीं दिनोंमें श्रीवीरविजयजी महाराजके पास भावनगर-निवासी सेठ कुँवरजी आनंदजीका एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि,—"मकसूदाबादनिवासी बाबू बुधसिंहजी दुधेरि-याने पालीतानेमें एक संस्कृतपाठशाला खोली है। जो मुनिराज अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए यह पाठशाला बहुत

ही उत्तम है । पढ़ने योग्य मुनियोंको आप इस पाठशालासे लाभ उठानेकी प्रेरणा करें । ”

श्रीवीरविजयजी महाराजने यह पत्र हमारे चरित्र नायकको बताया और कहाः—“ तुम्हारी अध्ययन करनेकी उत्कट अभिलाषा है । उसको पूरा करनेके लिए यह बहुत ही अच्छा अवसर है । जगह जगह भटकने और जुदा जुदा पंडितोंसे थोड़ा थोड़ा पढ़नेकी अपेक्षा, एक ही स्थानमें, एक ही पंडितसे क्रमशः ग्रंथोंका अध्ययन करना विशेष उत्तम है । इससे विशेष ज्ञानकी प्राप्ति होगी । जिस भाग्यवानने मुनिराजोंके लिए यह प्रयत्न किया है, उसका प्रयत्न भी सफल होगा । ”

आपके मनमें पढ़नेकी उत्कट अभिलाषा थी; मगर इस समय पढ़नेका कोई साधन नहीं था इसलिए आपके हृदय पर इस प्रेरणाने असर किया । आप हाथ जोड़कर बोलेः— “ आपका फर्माना ठीक है; परन्तु मैं अकेला कैसे वहाँ तक जा सकता हूँ । फिर महाराज साहबका हुक्म भी चाहिए । उनकी आज्ञाके बिना तो मैं एक क़दम भी नहीं उठा सकता हूँ । ”

श्रीवीरविजयजी महाराजने फ़र्मायाः—“ आचार्यश्रीकी आज्ञाके लिए तुम कुछ चिन्ता न करो । यदि तुम्हारी जानेकी इच्छा होगी तो आज्ञा मैं मँगवा दूँगा । आचार्यश्रीकी तुम पर पूर्ण कृपा है । वे चाहते हैं कि, तुम पढ़कर तैयार हो जाओ ताके उनके बाद पंजाबकी रक्षा कर सको ।

साथीके लिए अपने साथ जो साधु हैं उनसे पूछ लिया जाय। यदि कोई तैयार हो जायँ तो ठीक है, अन्यथा तुम दोनों गुरुचेले तो हो ही। वहाँ पहुँचने पर अनेक साथी मिल जायँगे। तुम अपने विचार दृढ कर लो, मैं आचार्य-श्रीको पत्र लिख देता हूँ।"

आपने कहाः—"आप आचार्यश्रीकी आज्ञा मँगवा लें। मैं जानेको तैयार हूँ। यदि और कोई साथी न मिलेगा तो हम दोनों गुरु चेले ही जायँगे।"

श्रीवीरविजयजी महाराजने आचार्यश्रीके पास आज्ञा लेनेक लिए पत्र भेजा। उस पर आपके हस्ताक्षर भी करा लिये। साथके साधुओंसे जब पूछा गया तो उनमेंसे मुनि श्रीराज विजयजी महाराज और मुनि श्रीमोतीविजयजी महाराज आपके साथ जानेको तैयार हो गये। आचार्यश्रीकी भी आज्ञा आई कि,—"यदि जानेकी इच्छा हो तो खुशीके साथ जाओ मगर पाँच सालसे ज्यादा उधर न रहना। पाँच सालके अंदर जब इच्छा हो तभी यहाँ लौट आना। इस बातका खयाल रखना कि, कहीं दोनों तरफसे न जाओ।"

न खुदा ही मिला न विसाले सनम।
न इधरके रहे न उधरके रहे।

आपने जानेकी तैयारी कर ली। अमृतसरके श्रीसंघने आपको ठहरनेकी विनती की और कहाः—"हम श्रीसंघके दो

आदमी जाकर आचार्यश्रीके पास सब बातें स्थिर कर आते हैं। आप ठहर जाइए।"

मगर आपको ज्ञान प्राप्त करनेकी लगन लग रही थी। आप कब सुननेवाले थे। बोलेः—"महाराज साहबने आज्ञा कर दी है। अब कोई बात स्थिर करनेके लिए न रही।"

श्रीसंघने नम्रता पूर्वक कहाः—"हम आपसे विवाद करना नहीं चाहते मगर हम इतना कहे विना नहीं रह सकते कि आपने आचार्यश्रीके अभिप्रायको नहीं समझा। आचार्यश्रीने स्पष्ट लिखा है कि,—"यदि जानेकी इच्छा होतो जाओ।" इसका साफ् मतलब यह होता है कि, आश्चर्यश्री अपनी इच्छासे आपको नहीं भेजते। यदि वे भेजना चाहते तो आपकी इच्छाकी बात अंदर न लिख कर स्पष्ट लिखते कि,—"तुम अमुक अमुक साधुको साथ लेकर पालीताने चले जाओ।" फिर पत्रमें लिखा है,—"पाँच बरसमें जब चाहो तभी आजाना।" इसका अभिप्राय यह है कि, तुम्हारी इच्छामें हम वाधा डालना नहीं चाहते; परन्तु यथा साध्य जितना शीघ्र हो सके तुम हमारे पास आजाना। पाँच सालसे ज्यादा तो किसी तरहसे भी दूर न रहना। "कहीं दोनों तरफ़से न जाओ" यह वाक्य स्पष्ट बताता है कि, आचार्यश्रीकी इच्छा आपको उधर भेजनेकी बिलकुल नहीं है। इतना ही क्यों? श्रीजी इस वाक्यको लिखकर स्पष्टतया अपना हृद्गत बता रहे हैं कि, तुम न जाओ। यदि जाओगे तो दोनों तरफ़से रहोगे। न

यहीं कुछ सीख सकोगे और न वहाँसे ही कुछ मिलेगा । अतः आपके लिए महाराज साहबके चरणोंमें रहना ही उत्तम है । ऐसा न हो कि—

'आधी छोड़ आखीको जाय,
आधी रहे न आखी पाय ॥'

वाला हिसाव हो जाय और पंजावके श्रीसंघको इसका फल भोगना पड़े; क्योंकि आचार्यश्रीने आपको खास पंजाव-श्रीसंघके ही नाम कर दिया है । आपकी और खासकर हमारी इसीमें भलाई है कि आप महाराज साहबके साथ ही रहें।"

लाला पन्नालालजी जौहरी, लाला महाराजमलजी सराफ आदिका इस तरहका आग्रह देखकर एवं युक्ति संगत कथन सुनकर आपने फर्मायाः—" आप चिन्ता न करें । मैं पहले यहाँसे महाराज साहबके चरणोंमें जाकर हाजिर होऊँगा । फिर जैसी वे आज्ञा देंगें वैसा ही करूंगा । "

पंजावके श्रीसंघने आपकी यह वात मान ली । आप अमृतस-रसे विहारकर जंडियाला महेता, श्रीगोविंदपुर आदि स्थानोंमें होते हुए मियानी जिला होशियारपुरमें आचार्यश्रीके चरणोंमें जा उपस्थित हुए। आपने आच.र्यश्रीसे प्रार्थना की कि-"मेरे पढ़ने जानेके विषयमें आपकी क्या आज्ञा है । "

आचार्यश्रीने यह सोचकर कि, इनका उत्साह भंग न हो जाय, फर्मायाः-" तुम खुशीसे जाओ । मैं नाराज नहीं हू ।

मगर उधर अधिक समय न लगाना। यथा साध्य शीघ्र ही हमसे आ मिलना।"

आप आचार्यश्रीकी आज्ञा लेकर मियानीसे रवाना हुए और जलंधर, लुधियानादि शहरोंमें होते हुए अंबाले पधारे। जबसे आपने अमृतसरसे विहार किया तभीसे सारे पंजाबमें यह खबर फैल गई थी कि, वल्लभविजयजी महाराज गुजरात जाने वाले हैं। इसलिए अमृतसर, होशियारपुर, गुजराँवालादि स्थानोंके श्रीसंघोंके पत्र अंबालेमें श्रीसंघपर और खास खास श्रावकोंके पास भी आये। उनका आशय यह था,—कि जैसे हो सके वैसे मुनि श्रीवल्लभविजयजीको अंबालेसे आगे मत जाने देना। कमसे कम इस चौमासेतक उन्हें वहीं रोक लेना। इतनेमें आचार्यश्रीसे अर्ज करके उनके गुजरातमें जानेकी मनाई करवा देंगे। तदनुसार अंबालेके श्रीसंघने आपसे थोड़े दिन वहाँ ठहरनेकी प्रार्थना की। दैवयोग! स्पर्शना प्रबल! ज्ञानीका देखा कभी अन्यथा नहीं होता। आपके साथमें आपके बड़े गुरुभाई श्रीराजविजयजी महाराज थे। उन्हें बुखार आने लग गया। करीब एक महीनेसे भी अधिक समयतक बुखारने पीछा नहीं छोड़ा। चौमासा पासमें आ रहा था, तोभी आपने स्थिर कर रक्खा था कि, यदि आषाढ़ सुदी १ तक भी ये चलने लायक हो जायँगे तो आठ दिनमें हम दिल्ली जा पहुँचेंगे।

अंबालाके श्रीसंघने आचार्यश्रीके चरणोंमें एक प्रार्थनापत्र

भेजा उसमें लिखा था कि,–" १०८ श्रीराजविजयजी महाराजका शरीर अशक्त है। ऐसी हालतमें अगर हठ करके यहाँसे मुनिमहाराज विहार कर जायँगे तो मार्गमें विशेष तकलीफ हो जानेकी संभावना है। इस लिए आप उन्हें यहीं चौमासा करनेकी आज्ञा करें। हम उन्हें यहाँसे विहार तो हरगिज न करने देंगे; क्योंकि ऐसी हालतमें उनके यहाँसे विहार कर जानेसे हमारे शहरकी बदनामी होगी। आप अवसरके जानकार हैं इसलिए आपका आज्ञापत्र आजानेसे हमें बहुत सहारा मिल जायगा।"

आचार्यश्रीने अंबालेके श्रीसंघकी इच्छानुसार आज्ञापत्र भेज दिया कि,–" तुम अंबालेके श्रीसंघकी विनतीकी अवहेलना मत करना। अभी राजविजयजीका शरीर विहार करने लायक भी नहीं है। इसलिए अंबालेहीमें चौमासा करलेना। तुम जवान हो। चतुर्मास करलेनेके बाद भी तुम लोग विहार करके पालीताने पहुँच सकोगे।"

आचार्य महाराजकी आज्ञा मिल गई, फिर क्या था? आप चुप हो रहे। वहीं चौमासा स्थिर हो गया। उस समय आपको अमृतसरके वृद्ध श्रावक लाला बागामलजी लोढ़ाकी बात याद आई। उन्होंने अमृतसरसे चलते समय कहा था कि,–" महाराज! आप मुझ बूढ़ेकी बात न सुनकर यहाँसे जा रहे हैं; मगर याद रखिए कि आप अंबालेसे

आगे इस चौमासेके पहले तो न जा सकेंगे। यदि मेरी बात झूठ निकले तो कहनां बूढ़ा बड़ा लबाड़ था।"

अब आपके विचारोंमें एक परिवर्तन उपस्थित हुआ। आप सोचने लगे,—महाराज साहबकी आज्ञा पाँच वरसमें लौट आने की है। मगर यदि बीमार हो जाऊँगा तो क्या होगा? विद्या विना तो रहूँगा ही ऊपरसे आचार्यश्रीकी छत्र-छाया और कृपासे भी वंचित रहूँगा। गुरुआज्ञाभंग कर-नेका दोष भी सिरपर आयगा। इस औदारिक शरीरका भरोसा ही क्या है? यह कौन जानता था कि, राजविजयजी महाराजकी तबीअत बिगड़ जायगी आर हम एक महीना अंबालेहीमें रहना पड़ेगा।

इधर आपके मनमें दुविधा उत्पन्न हुई उधर गुजरातके भिन्न भिन्न स्थानोंसे आपके पालीतानेजानेके समाचार सुनकर पत्र आने लगे। उन सबका आशय यही था कि,—"आपके गुजरातकी तरफ़ आनेके समाचार सुनकर हमें आनंद हुआ; क्यों कि कई बरसोंके बाद आपके गुजरातको दर्शन होंगे। मगर आनंदसे ज्याद दुःख हमें यह समझकर हुआ कि साक्षात् कल्पवृक्षके समान, मन-वांछित फल देनेवाले, ज्ञानसागर, गुणके आगार, परमगीतार्थ, युगप्रधानके तुल्य १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजके चरणोंमें गुरुकुल-वासमें—अध्ययन करना छोड़कर आप इधर आनेको तैयार हुए हैं। देखना भूल कर भी किसीकी उल्टी सलाह न मान-

लेना। हम आपके दर्शनलाभसे वंचित रहकर भी आपका आचार्यश्रीकी चरणसेवामें रहना ज्यादा पसंद करते हैं। इसीमें आपका और साथ ही समाजका भी कल्याण है।"

इन पत्रप्रेषकोंमेंसे बड़ौदाके धर्मात्मा सेठ गोकलभाई दुर्लभदास, खीमचंद भाई, आपको पहले दिनसे ही धर्मकाममें सहायता देनेवाले जौहरी हीराचंद ईश्वरदास। भरूचके सेठ अनोपचंद मलूकचंद, खंभातके सेठ पोपटभाई अमरचंद, धूलिया (खानदेश) के सेठ सखाराम दुल्लभदास आदि सज्जन मुख्य थे।

आपके दिलमें पहले ही अनेक तर्क वितर्क उठ खड़े हुए थे और फिर ऊपरसे पंजावके समस्त श्रीसंघका और गुजरातके अनेक धर्मात्मा श्रावकोंका आग्रह। आपका दिल फिर गया। आपने निश्चय कर लिया कि आचार्यश्रीकी चरणसेवा छोड़कर मैं कहीं न जाऊँगा। विद्या जो कुछ प्राप्त होनी होगी मुझे आचार्यश्रीके चरणोंमें बैठ कर ही होगी।

श्रीराजविजयजी महाराज, श्रीमोतीविजयजी महाराज और श्रीविवेकविजयजी महाराज सहित बड़े आनंदसे आपने अंबालेमें चौमासा विताया। वहाँ किसी निकम्मीसी बातके पीछे श्रावकोंके आपसमें मनमुटाव हो रहा था वह भी मिट गया और मंदिर बनानेका कार्य जोरोंसे चलने लगा। इस तरह अंबालेमें आपका सं० १९४९ का छठा चौमासा हुआ।

अंबालासे विहारकर आप लुधियाना होते हुए जलंधर शहरमें पधारे । आचार्यश्री होशियारपुरसे विहार कर वहीं विराजे हुए थे । आपने जाकर आचार्यश्रीके चरणोंमें सिर रक्खा । आचार्यश्रीने मुस्कुराकर पूछाः—" पंडित हो आया ? "

आपने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक अर्ज की,–" भूल सुधार आया, कल्पवृक्ष छोड़कर भ्रमसे अन्यत्र मनोवांछित फल पानेकी इच्छा करता था उस भ्रमको मिटा आया । "

आचार्यश्री जलंधरसे विहारकर वेरोवाल, जंडियालागुरु होते हुए अमृतसर पधारे । वेरोवालमें बंबईके श्रीसंघकी मार्फत चिकागोकी पार्लियामेंटका आमंत्रणपत्र ' सार्वधर्म परिषद ' में शामिल होनेके लिए मिला । साधुधर्मके कारण आचार्यश्री तो वहाँ जा नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने बंबईसे वीरचंद राघवजी गाँधीको बुलाया और उन्हें एक निबंध उस परिषदमें पढ़नेके लिए लिख दिया । वह निबंध ' चिकागो प्रश्नोत्तर ' के नामसे प्रकाशित हो चुका है । आचार्यश्रीने पेन्सिलसे रफ़ लिख दिया था । उसकी साफ नकल हमारे चरित्रनायकने की थी ।

आचार्यश्री अमृतसरसे विहारकर जंडियालागुरु पधारे । सं १९५० का चौमासा यहीं किया । आयार्यश्रीने व्याख्यानमें श्रीसूत्रकृतांगका व्याख्यान इसलिए रक्खा था कि; हमारे चरित्रनायकको भी उसकी वाचना मिलती रहे ।

आपने आचार्यश्रीकी इच्छानुसार यहाँ जैनमतवृक्ष तैयार किया। कई साधुओंको भी आप यहाँ पढ़ाते रहे। इस तरह सं० १९५० का सातवाँ चौमासा आपका जंडियाला गुरुमें हुआ।

\+ \+ \+ \+

जंडियालागुरुसे आचायश्री, घुटनोंमें दर्द हो जानेसे, चौमासा समाप्त होजानेपर भी विहार न कर सके। कुछ समयतक वहीं विराजे। जिन जिन मुनिराजोंका उस समय पंजावके अन्यान्य शहरोंमें चौमासा था वे चौमासा समाप्त कर आचार्यश्रीके चरणोंमें आ उपस्थित हुए। मुनिराजोंमेंसे मुख्य ये थे,–१०८ श्रीकमलविजयजी महाराज, १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराज, १०८ श्री वीरविजयजी महाराज, १०८ श्रीकान्तिविजयजी महाराज आदि।

मुनिराजोंने आचार्यश्रीसे नवीन साधुओंकी योगोद्वहन क्रिया करानेके लिए प्रार्थना की। आचार्यश्रीने अनुकूल क्षेत्र और समय देख इस प्रार्थनाको स्वीकार किया और १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराजके शिष्य श्रीकपूरविजय, १०८ श्रीवीरविजयजी महाराजके शिष्य श्रीदानविजयजी, १०८ श्रीकांतिविजयजी महाराजके शिष्य श्रीचतुरविजयजी तथा श्रीलाभविजयजी, १०८ श्रीहंसविजयजी महाराजके शिष्य श्रीतीर्थविजयजी, और हमारे चरित्रनायकके शिष्य श्रीविवेक-

१ श्रीतीर्थविजयजी महाराजका, योगोद्वहनकी क्रिया समाप्त होनेके पहले ही, स्वर्गवास हो गया था।

विजयजी, इन छः साधुओंको छेदोपस्थापनीय योगोद्वहन करानेकी क्रिया शुरू की ।

आचार्यश्री प्रायः सब क्रियाएँ हमारे चरित्रनायकके हाथसे कराते थे; सायंकालकी क्रिया तो समाप्तितक सदा हमारे चरित्रनायकने ही कराई थी ।

इसके कुछ दिन बाद आचार्यश्री जंडियालासे विहार कर पट्टी पधारे । यहाँ श्रीदानविजयजी आदि योगोद्वाही पाँचों मुनियोंको बड़ी दीक्षा दी गई । इसकी सारी क्रिया आचार्य-श्रीने हमारे चरित्रनायकके हाथोंहीसे कराई थी ।

पट्टीसे विहार करके श्रीआचार्य महाराज जीरा पधारे । शहरमें बड़ा उत्साह फैला । बड़े समारोहके साथ आचार्यश्रीका नगर प्रवेश हुआ । श्रावकोंकी प्रार्थना और वहाँके लोगोंकी धर्मजिज्ञासाको देखकर आचार्यश्रीने सं० १९५१ का चौमासा वहीं किया । हकीम हरदयालजी, खलीफा--मास्टर माघी रामजी, शिब्बूमलजी आदि कई भव्यजीव धर्मकी बारीक बातों और तार्किक दलीलोंको अच्छी तरह समझ सकते थे इसलिए उनके आग्रहसे आचार्यश्रीने व्याख्यानमें गणधर वाद वाँचना प्रारंभ किया । हमारे चरित्र नायकको भी दूसरी बार इसको सुननेका लाभ मिला । इस चौमासेमें आचार्यश्रीने आपको 'यतिजीत कल्प' आदि कुछ छेद ग्रंथोंका अध्ययन भी कराया । इस तरह हमारे चरित्र

नायकका सं० १९५१ का आठवाँ चौमासा जीरा जिला फिरोजपुरमें हुआ।

चौमासा समाप्त होते ही आचार्य श्री जीरासे विहार करना चाहते थे क्योंकि पट्टीमें पट्टीके मंदिरकी प्रतिष्ठा करवानी थी; परन्तु श्रीवीरविजयजी महाराज और श्रीकांतिविजयजी महाराजका--जिन्होंने पट्टीमें चौमासा किया था--पत्र आया कि आप अभी जीरासे विहार न करें तो उत्तम हो; क्योंकि हम आपकी पदधूलि मस्तक पर चढ़ाकर बाकानेरकी तरफ जानेका इरादा रखते हैं।

आचार्यश्री जीराहीमें विराजमान रहे। कुछ दिनोंके बाद श्रीवीरविजयजी महाराज और श्रीकांतिविजयजी महाराजने अपने शिष्यों सहित आकर आचार्यश्रीके दर्शन कर अपनेको कृतार्थ किया।

इस वार आचार्यश्रीकी हमारे चरित्रनायक पर अधिक कृपा देखकर दोनों मुनिराजोंके नेत्रोंमें हर्षाश्रु आगये। उन्हें इस बातकी प्रसन्नता ही नहीं बल्के उचित अभिमान भी था कि, उनका एक गुजराती भाई पंजाबका प्यारा बन रहा है। श्रीकांतिविजयजी महाराजको और भी अधिक प्रसन्नता इस लिए थी कि, जो मुनि पंजाबके और खासकर आचार्य श्रीके प्रियपात्र हो रहे हैं वे उनके स्वप्रान्तके ही नहीं बल्के स्वनगरके भी हैं।

एक दिनकी बात है। श्रीकांतिविजयजी महाराज और हमारे चरित्रनायक एक तरफ बैठे कुछ शास्त्रीय चर्चा कर रहे थे। इतनेहीमें आचाय महाराज पधार गये। दोनों उठे और हाथ जोड़ सिर झुका सामने खड़े हो रहे।

आचार्यश्रीने मुस्कुराकर परिहासके तौरपर श्रीकांतिविजयजी महाराजसे कहाः—"देखना मेरे तैयार किये हुए साधुको कहीं गुजरातमें न उड़ाले जाना मुझे पंजावके लिए इससे बहुत बड़ी आशा है।"

श्रीकांतिविजयजी महाराजने भक्ति पूर्वक आचार्यश्रीके पदपद्मोंमें नमस्कार कर कहाः—"कृपानाथ! ऐसा कभी न होगा। यह आपका कृपापात्र बनगया है। इसके मनपर आपकी कृपादृष्टिका ऐसा जादू हो गया है कि, वह किसीके उतारे उतरने वाला नहीं है।" सच है—

तुझे देखकर औरोंको किन आँखोंसे हम देखें?
वे आँखें फूट जायँ औरोंको जिन आँखोंसे हम देखें।

"मैंने तो जब कभी इस विषयकी बात चली है इसको यही सलाह दी है कि, तू कभी गुरुचरणोंसे जुदा न होना। तेरा अहो भाग्य है जो तू आचार्य भगवानका विश्वासपात्र बनगया है। देखना कभी कोई ऐसी बात न करना जिससे तुझ पर आचार्यश्रीको शंका करनेका मौका मिले। कृपासागर! इसके इस दर्जेपर पहुँचनेकी मुझे जितनी

प्रसन्नता है इतनी अन्य किसीको होगी या नहीं ज्ञानी महाराज जानें।"

इससे पाठकोंको विदित होगा कि, १०८ श्रीकांतिविजयजी महाराज आपपर कितनी श्रद्धा और कितना प्रेम रखते थे और अब भी रखते हैं। इसकी साक्षी आपको वह पत्र देगा जो उन्होंने, अभी गत वर्ष हमारे चरित्रनायकको श्रीसंघने लाहोरमें जब आचार्यपद पर स्थापित किया था, उस समय हमारे चरित्रनायकके पास भेजा था। वह पत्र हम पदवीप्रदानके समयकी अन्यान्य घटनाओंके साथ देंगे। वह पत्र हरेक आचार्य महाराजके एवं हरेक मुनिराजके पढ़ने और मनन करने योग्य है।

कुछ समय बाद आचार्यश्री जीरासे विहारकर पट्टी पधारे। श्रीकांतिविजयजी महाराजने अपने शिष्यों सहित बीकानेरकी तरफ़ विहार किया और श्रीवीरविजयजी महाराज अपने शिष्य सहित वहीं रहे।

श्रीआचार्य महाराजके पधारने पर पट्टीके श्रीसंघमें बड़ा उत्साह फैला। आचार्यश्रीकी इच्छानुसार प्रतिष्ठाका प्रबंध होने लगा। आमंत्रण पत्रिकाएँ भेजी गई। अनेक लोग आये। बड़ी धूमधामसे सं० १९५१ के माघ सुदी १३ के दिन आचार्यश्रीने श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको गद्दीपर विराजमान किया अर्थात् वासक्षेप किया। इसी मुहूर्तमें पचास नवीन प्रतिमाओंकी नवीन प्रतिष्ठा—अंजनशलाका भी आचार्यश्रीने की थी। इसमें यथाशक्ति हमारे चरित्रनायकने आचार्यश्रीका हाथ

बताया था। जीराके चौमासेमें आचार्यश्रीने 'तत्वनिर्णय-प्रासाद' नामका ग्रंथ लिखना प्रारंभ किया था, यहीं आपने उसकी प्रेसकॉपी करनी शुरू की थी।

पट्टीसे विहार करके आप अंबाला पधारे और सं० १९५२ का नवाँ चौमासा आपने आचार्यश्रीके साथ यहीं किया। यहीं आचार्यश्रीकी दूसरी आँखका मोतिया निकलवाया गया था इसलिए आप नवीन ग्रंथका अध्ययन न कर सके। हाँ तत्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथका उल्लेखन होता रहा। सं० १९५२ के मार्गशीर्ष सुदी १५ के दिन अंबाले शहरमें श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिष्ठा हुई।

अंबालेसे विहार करके लुधियानाआदि स्थानोंमें होते हुए आप आचार्य महाराजके साथ सनखतरा पधारे। सनखतरेका मंदिर बड़ा ही सुंदर बना हुआ है। जब आचार्यश्रीके साथ आप दर्शनार्थ मंदिरके जीनेपर चढ़ रहे थे तब आचार्यश्रीने आपको फर्मायाः—" अरे वल्लभ! क्या हम शत्रुंजयपर चढ़ रहे हैं? "

आपने निवेदन कियाः—" हाँ साहब! यह शत्रुंजय तीर्थ-पर विराजमान मूलनायक श्रीऋषभदेवजीकी, टूँककासा बना हुआ साक्षात् शत्रुंजय ही मालूम देता है। "

यहाँपर दो सौ पचहत्तर जिनबिंबोंकी अंजनशलाका हुई थी इसमें आप स्वर्गीय आचार्य महाराजकी दाहिनी भुजाके समान थे।

जेठ वदी ६ सं० १९५३ को सनखतरासे विहार करके घसरूर, छछराँ वाली, सतराह, सेराँवाली वड़ाला होते हुए आचार्य महाराजके साथ आप गुजराँवाला पधारे।

वड़ाला गाँवसे ही आचार्यश्रीको श्वासका रोग वढ़ गया था; मगर आचार्यश्रीने कभी उसकी परवाह न की। आपने अन्यान्य साधु महात्माओं सहित आचार्य महाराजसे औषधोपचार करानेकी प्रार्थना की मगर आचार्य महाराज यह कह कर वात टाल देते थे कि ऐसे छोटे छोटे रोगोंका क्या इलाज कराना। यद्यपि होनी कभी टलनेवाली न थी; मगर हमारे चरित्रनायकको आजतक इस वातका अफसोस है कि, आपने आचार्यश्रीका, साग्रह निवे-दन करके, इलाज क्यों न कराया।

सं० १९५३ जेठ सुदी सप्तमी मंगलवारकी रात थी। आचार्यश्री और सभी साधु प्रतिक्रमण, संथारा, पौरसी आदि नित्य क्रियाएँ करके आराम करने लगे थे। घड़ीने वारह वजाये उस समय आचार्यश्रीको दस्तकी हाजत हुई। वे उठ वैठे और दिशा गये आप आचार्यश्रीके निकट ही सो रहे थे। आपकी नींद खुल गई; उठ वैठे। आचार्यश्री हाजत-रफा करके आसन पर वैठें 'अर्हन्' 'अर्हन्' वोलरहे थे, इतने हीमें दम उलट गया। सभी साधुओंकी नींद टूट गई। आप उठकर आचार्यश्रीके चरणोंमे वैठे। आचर्यश्री उस समय वड़ी कठिनतासे वोल सकते थे। उनके मुखसे केवल 'अर्हन्' शब्द

निकलता था। जब आप उनके चरणोंके पास जा बैठे तो उन्होंने सस्नेह आपके सिरपर हाथ रक्खा और आन्तरिक आशीर्वादकी दृष्टि की।

आचार्यश्री प्रयत्न करके बोलेः—"लो भाई, अब हम चलते हैं और सबको खमाते हैं।" इस बातको सुनकर सभी साधु रोने लगे। आचार्यश्रीने और दो चार वार 'अर्हन' शब्दका उच्चारण किया और उनका जीवनहंस सदाके लिए जड़ देह-पिंजरका त्याग करके उड गया। उस समय जो दुःख साधु और श्रावक-मंडलमें फैल गया उसका वर्णन करना हमारी तुच्छ लेखनीकी शक्ति के बाहर है। हमारे चरित्र नायकको जो दुःख हुआ उसका अंदाजा वे सभी मनुष्य लगा सकते हैं जिन्होंने अपने पिताकी, महरबान पिताकी हृदयके टुकड़े कर देनेवाली मौत देखी है।

दुःखकी परमौषध रुदनका पूर्ण रूपसे पान करने पर जब हृदय कुछ हल्का हुआ तब शोकावेगमें जो दो भजन आपने लिखे थे हम उन्हें यहाँ उद्धृत कर देते हैं।

(१)

हेजी तुम सुनियो जी आतमराम, सेवक सार लीजो जी ॥ अंचली ॥
आतमराम आनंदके दाता, तुम बिन कौन भवोदधि त्राता ?
हुं अनाथ शरणि तुम आयो, अब मोहे हाथ दीजो जी ॥ हे० ॥ १ ॥
तुम बिन साधु-सभा नहिं सोहे, रयणी कर बिन रयणी खोहे।
जैसे तरणि विना दिन दीपे, निश्चय धार लीजो जी ॥ हे० ॥२॥

दिन दिन कहते ज्ञान पढ़ाऊँ, चुप रह तुझको लड्डु खिलाऊँ।
जैसे मात बालक पतयावे, तिम तुमे काहे कीजो जी॥ हे०॥२॥
दीन अनाथ हुं चेरो तेरो, ध्यान धरूँ मैं निशदिन तेरो।
अब तो काज करो गुरु मेरो, मोहे दीदार दीजो जी॥ हे०॥ ३॥
करो सहाय भवोदधि तारो, सेवक जनको पार उतारो।
बार बार विनती यह मोरी, 'वल्लभ' तार लीजो जी॥ हे०॥ ४॥

(२)

गजल—(चाल रास धारियोंकी)

विना गुरुराजके देखे, मेरे दिल बेकरारी है॥ अंचालि॥
आनंद करते जगतजनको, वयण सत सत सुना करके॥ वि०॥
तनु तस शांत होया है, पाया जिनें दर्श आकरके॥ वि०॥
मानो सुर सूरि आये थे, भुवि नरदेह धर करके॥ वि०॥
राजा अरु रंक सम गिनते, निजातम रूप सम करके॥ वि०॥
महा उपकार जग करते, तनु फनाह समझ करके॥ बि०॥
जीया 'वल्लभ' चाहता है, नमन कर पाँव पड़ करके॥ वि०॥

उस वर्ष यानी सं० १९५३ का दसवाँ चौमासा आपने गुजराँवालाहीमें किया। यहाँ आपने एक ऐसी योजना तैयार की कि जिसको आचरणमें लानेसे स्वर्गीय आचार्यश्रीकी स्मृति सदा कायम रहे। फिर इस योजनाको व्यवहारमें लानेका आपने पंजाबके श्रीसंघको उपदेश दिया। पंजाबका संघ उसे व्यवहारमें लाया। वह योजना यह थी—

(१) आत्म संवत् प्रारंभ करना। यह संवत् बराबर चल रहा है।

(२) आचार्यश्रीका समाधि मंदिर बनवाना। मंदिरकी नींव सं.१९५३ आत्मसंवत १ में पड़ी। मंदिर तैयार हो जाने पर सं. १९६५ आत्म संवत १२ वैशाख सुदी ६ को चरणस्थापना–समाधिमंदिरकी प्रतिष्ठा हुई। इस मंदिरका दूसरा नाम आत्मानंद जैनभवन है। इसी भवनमें अभी सं. १९८१ आत्म सं. २९. माघसुदी ६ शुक्रवारके दिन हमारे चरित्रनायकके हाथसे 'श्रीआत्मानंदजैनगुरुकुल पंजाब' की स्थापना हुई।

(३) 'श्री आत्मानंदजैनसभा' स्थापन करना। इस नामकी सभाएँ पंजाबके प्रायः सभी शहरों और कस्बोंमें स्थापित हैं। गुजरातमें भी हैं। सारी सभाओंके कार्यको केन्द्रीभूत करनेके लिए–'श्रीआत्मानंद जैनमहासभा पंजाब' की भी स्थापना हो चुकी है।

(४) पाठशालाएँ स्थापित करना। अनेक स्थानोंमें आत्मानंद जैन पाठशालाएँ चल रही हैं। श्रीआत्मानंद जैनमहाविद्यालय (जैन कॉलेज) स्थापित करानेका विचार भी किया गया था। उसके लिए 'पाइ फंड' नामका एक फंड जारी किया गया।

मगर पीछेसे वह बंद होगया । उस फंडकी जितनी रकम जमा हुई थी वह दो छात्रोंको पढ़ानेमें खर्च की गई । वे दोनों विद्वान होकर आज जैन समाजकी—जैनधर्मकी सेवा कर रहे हैं । वे विद्वान हैं वेदान्ताचार्य पं. व्रजलालजी और व्याकरण, न्यायाचार्य पं. सुखलालजी ।

यदि 'पाई फंड' चलता रहता तो उसके द्वारा कितना काय हो सकता था इसका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। मगर ज्ञानी महाराजने ज्ञानमें देखा था वैसा हुआ । आज कॉलेज नहीं तो भी उसके स्थानमें एक गुरुकुल तो स्थापित हो ही गया है ।

(५) श्री आत्मानंद जैनपत्रिकाका प्रकाशन करना । यह मासिक पत्रिका कई वरसोंतक बाबू जसवंतरायजी जैनीके संपादकत्वमें चलती रही थी ।

आचार्यश्रीके स्वर्गारोहणके बाद व्याख्यान वाँचना अन्य साधुओंको पढ़ाना, पंजाबके क्षेत्रोंकी सार सम्भाल लेना आदि सारा ही भार चारों तरफसे आप ही पर आ पड़ा । आपको गुरुवियोगका दुःख था, उस पर भी आपकी उमर छोटी थी । ऐसी दशामें गुरुवियोगसे विव्हल बने हुए श्रीसंघके चित्तको स्थिर करना और आचार्यश्रीके अभावमें प्रति पक्षियोंके किये हुए आक्रमणोंका उत्तर देना आपके लिए अत्यंत कष्टसाध्य काम था; मगर आपने जिस सावधानीसे कष्ट सहनकर

उस कामको किया और गुरु महाराजके नामके फर्राते हुए झंडेको वैसा ही कायम रक्खा उसको सारा जैन समाज जानता है; पंजाब संघका रोम रोम उसके लिए हमारे चरित्रनायकका कृतज्ञ है।

उस चौमासेमें आपके साथ वृद्ध साधु १०८ श्रीकुशलविजयजी महाराज, १०८ श्रीचंदनविजयजी महाराज, १०८ श्रीहीरविजयजी महाराज, १०८ श्रीसुमतिविजयजी महाराज, १०८ श्रीशुभविजयजी तपस्वी, १०८ श्रीलब्धिविजयजी महाराज, और १०८ श्रीरामविजयजी महाराज। ऐसे सात मुनिराज थे।

व्याख्यान सभामें व्याख्यान बाँचनेका आपका यह पहला ही अवसर था। व्याख्यानमें आप श्रोताओंकी रुचि और मुनिराजोंकी इच्छानुसार श्रीस्थानागसूत्र और सम्यक्त्व सप्ततिका वाँचते थे। श्रीआचार्य महाराज विरचित तत्वनिर्णय प्रासादका प्रस्तावनादि अवशेष कार्य भी आपने यहीं पर समाप्त किया था।

गुजराँवालेका चौमासा समाप्त होनेपर आपने वहाँसे, श्रीस्तम्भन पार्श्वनाथ और श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी यात्राके लिए रामनगरकी ओर विहार किया।

आप पपनाखा पधारे। वहाँ लाला गणेशदास और लाला जवंदामलने बहुत धर्मलाभ उठाया। वहाँ एक स्कूलमास्टर था वह जितने साधु या पंडित आते उन सबके पास अपनी शंकाओंका समाधान कराने जाता; मगर अब-

तक कोई उसकी शंकाएँ न मिटा सका था। आपके पास भी वह आया। एक घंटे तक आपके साथ बात चीत करके वह संतुष्ट हुआ। उसने हाथ जोड़ भक्ति गद्गद कण्ठसे कहाः—" कृपानाथ! आज मैं शंकाओंके भूतसे रिहा हो गया; मुझे बड़ी शान्ति मिली "

पपनाखासे आप विहार करते हुए किला दीदारसिंह पहुँचे। यहाँ लाला मइयादासजीका अच्छा प्रभाव था आपके लिहाजसे कई लोग व्याख्यान सुनने आते। जो एक बार भी आपकी मधुर वाणीका स्वाद चखता वह दूसरी दफा चखनेके लिए सौ काम छोड़कर दौड़ा आता। एक (सौवर्णिक) सर्दार—जो कई गाँवोंके मालिक और महाराजा रणजीतसिंहजीके प्रपौत्र सरदार इच्छरासिंहजी गुजराँवालोंके मित्र थे आपकी भक्तिमें ऐसे लीन हुए कि जबतक रोजमर्रा वे आपके दर्शन न कर लेते और आपके मुखारविंदसे धर्मोपदेश न सुन लेते तबतक उनको चैन न पड़ता।

फिर आप अकालगढ़ होते हुए रामनगर पहुँचे। वहाँ जितने श्रावक थे सभी स्वर्गीय बूटेरायजी महाराजके बनाये हुए थे। उन्होंने आपकी बड़ी सेवा की। वे सभी पुरानी वातोंका और स्मरणोंका वर्णन करते। उन्हें सुन सुनकर आप प्रसन्न होते।

वहाँ श्रावकोंकी अपेक्षा सर्वसाधारण लोग प्रायः विशेष संख्यामें आया करते थे। लाला रामेशाह वहाँके बड़े रईसोंमेंसे

एक थे । जातिके क्षत्रिय थे पक्के सनातन धर्मी थे। लोग उन्हें सनातन धर्मका स्तंभ कहते थे । उनपर आपका ऐसा प्रभाव पड़ा कि, वे नियमित रूपसे अपने मित्रों सहित व्याख्यानमें आते और सार्वभौम धर्मका उपदेश सुन आनंदित होते।

एक सिक्ख सरदार कर्तारसिंहजी वहाँ पोस्ट और तार मास्टर थे। उन्होंने भी आपकी तारीफ सुनी। वे एक दिन व्याख्यान सुनने चले गये । व्याख्यान सुनकर वे इतने प्रसन्न हुए कि दूसरे दिनसे व्याख्यानके समय सकुटुंब आने लगे और बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिसे धर्मोपदेश सुनने लगे।

पन्द्रह बीस दिन रहनेके बाद आप रावलपिंडीकी तरफ जानेको तैयार हुए। शहर भरमें इस बातके फैलते ही उदासी छा गई। जब आखिरी दिनका व्याख्यान समाप्त हुआतब सर्दार कर्तारसिंहजी आदि श्रद्धालुजनोंने प्रार्थना की कि, आप एक महीना यहीं समाप्त करें।

हमारे चरित्रनायकमें एक बहुत बड़ा गुण है कि आप अपनेसे वृद्ध साधुओंका बड़ा मान रखते हैं। यह गुण प्रसिद्धि पाये हुए लोगोंमें बहुत ही कम होता है। आप विहार करना न करना आदि बातें अपनेसे वृद्ध साधुओंकी इच्छानुसार ही किया करते हैं, उन्हें सदा पूज्य समझते हैं और वे नाराज न हों इस बातका खयाल रखते हैं। अतः आपने फर्माया:—"यहाँ रहना न रहना श्रीबाबाजी महाराज श्री कुशलविजयजीके हाथकी बात है। मैं तो उनका आज्ञापालक हूँ।"

सरदारजी बाबाजीकी सेवामें उपस्थित हुए। बाबाजीने फर्माया कि, " आपका धर्मराग प्रशसंनीय है मगर आगेके गाँवोंके लोगोंको भी तो लाभ पहुँचाना चाहिए "। सर्दारजी वगैराने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी बैठे रहे। बाबाजीने कहाः—" सरदारजी छोटे छोटे बच्चे सवेरेसे भूखे हैं। पोस्टकी थैली बंद पड़ी है। लोग अपने पत्र पानेके लिए व्याकुल हो रहे हैं।"

सरदारजीने पोस्ट ऑफिसकी तालियाँ बाबाजी महाराजके सामने डाल दीं और कहाः—"यदि आपकी इच्छा हो तो बच्चोंको खिलाइए और लोगोंकी व्याकुलता मिटाइए, वरना हम तो यहीं बैठे हैं।"

आखिरकार बाबाजीने आपसे पूछाः—" वल्लभविजयजी! क्या कहते हो?" आपने उत्तर दियाः—" आप मालिक हैं।" अगत्या बाबाजीने महीना वहीं पूरा करनेकी अनुमति दे दी। लोग प्रसन्नताके साथ जयजयकार मनाते चले गये। एक महीना समाप्त होनेपर आप वहाँसे गुरुवियोग—दुःखसे उदास बने हुए लोगोंको धीरज बँधाते हुए रवाना हुए।

रामनगरसे विहार कर आप पुनः अकालगढ़ पहुँचे। आपने पन्द्रह दिन तक वहाँके लोगोंको धर्मामृत पान कराया। यहाँपर वड़ोदानिवासी आपकी मासीके पुत्र भाई, जौहरी नगीन भाई और अहमदाबादनिवासी जौहरी हरिभाई छोटा-लाल आपके दर्शनार्थ आये थे। इन लोगोंकोयह देख-

कर आश्चर्य हुआ कि, किसी श्रावकके न होते हुए भी आप इतने दिनसे वहाँ हैं और जैनेतर लोग आपकी इतनी सेवाभक्ति करते हैं।

आपकी प्रेरणासे दोनों सज्जन रामनगर यात्रा करनेके लिए गये थे। वहाँ पन्नेकी श्रीस्तंभन पार्श्वनाथकी मूर्तिके दर्शन करके वे मुग्ध होगये। सचमुच ही वह मूर्ति ही ऐसी है। उन्होंने, आपको पूछने पर, कहा था,–कि हमने अपनी आयुमें इतना बड़ा बेदाग पन्ना कहीं भी नहीं देखा।

उस समय नगीनभाईने एक ऐसी बात कही थी जिसे हरेक नवयुवकको, चाहे वह गृहस्थी हो या साधु, हर वक्त अपने सामने रखनी चाहिए। उन्होंने कहा था,—" आप वृद्ध महात्माओंके साथमें रहते हैं यह बात बहुत ही श्रेष्ठ है। वृद्ध साधुओंके सहवाससे युवक साधु अनेक तरहकी बुराइयोंसे बच जाते हैं। "

उस समय श्रीकुशलविजयजी (बाबाजी) महाराज, श्रीहीर-विजयजी महाराज और श्रीसुमतिविजयजी महाराज ये तीनों-वृद्ध मुनिराज थे।

अकालगढ़से विहार कर आप गुजराँवाला पधारे। एक महीनेतक वहाँ निवास किया और श्रद्धालु भक्तोंको जिनव-चनसुधा पिलाई।

गुजराँवालासे विहार करके आप जम्मू पधारे। कई बर-सोंसे वहाँ मुनिराजका पधारना नहीं हुआ था। लोग बड़ी

उत्कण्ठासे आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे।आपके वहाँ पहुँचने पर बड़ी धूमके साथ आपका स्वागत किया गया। व्याख्यानमें श्रावकोंके सिवा कई सनातन धर्म और सिक्ख भी आया करते थे। दुपहरके समय भी कई ब्राह्मण आपके पास आते थे और धर्मचर्चा कर प्रसन्न होते थे। एक महीने तक आप वहाँ विराजे।

जम्मूसे आपने सनखतरेकी तरफ विहार किया। रास्तेमें विशनाह नामक गाँवमें रात रहे। आप जिस धर्मशालामें ठहरे थे उसमें एक कथाभटजी कथा वाँचा करते थे। शामको कथा वाँच कर उठे। उन्हें मालूम हुआ कि, धर्मशालामें कोई ठहरा है। उन्होंने नौकरको पुकारा और पूछाः—"धर्मशालामें कौन ठहरा है?" नौकर ने उत्तर दिया कि साधु ठहरे हैं" साधुका नाम सुनते ही भटजी गर्ज कर बोलेः—"तूने साधुको किसके हुक्मसे ठहराया है।" फिर उन्होंने आकर असभ्यताके साथ पूछाः—"तुम कौनसे साधु हो?"

आपने शांत भावसे मधुर शब्दोंमें कहाः—"पंडितजी बैठिए! आप जानते हैं कि अगले जमानेमें वनोंमें जाकर गृहस्थ साधुओंकी सेवा किया करते थे। आज नगरमें आये हुए साधुओंका सेवा करना तो दूर रहा, उन्हें रात वितानेके लिए ढाई हाथ जमीन भी गृहस्थ न देंगे? अपने घरकी जमीन दूर रही मुसाफिरोंके लिए ही जो स्थान है उस स्थानमें भी,—एक मुसाफ़िर समझकर भी, क्या ढ़ाई हाथ जमीन साधुको देना गृहस्थके लिए दुखदायी है? आप तो पंडित हैं। धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता

हैं। अन्यान्य हिन्दु शास्त्रोंकी तरह आपने वसिष्ठ स्मृति भी जरूर देखी होगी। उसमें लिखा है कि, ब्रह्मचारी–स्नातक राजाकी अपेक्षा भी पूज्य और बड़े होते हैं। एक ओरसे राजा आता हो और दूसरी ओरसे ब्रह्मचारी आता हो तो राजाको चाहिए कि, वह ब्रह्मचारीको प्रणाम कर एक ओर हट जाय और उसे निकल जाने दे। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है कि-

" एक घड़ी आधी घड़ी आधीमें भी आध।
तुलसी संगत साधकी, कटे कोटि अपराध॥ "

भटजी आपकी मधुर और ऋषियोंके वाक्योंसे मिश्रित वाणी सुनकर ठंडे पड़ गये, मगर फिर भी बोले:–" महाराज! आज साधुओंके वेषमें अनेक लुच्चे लफंगे फिरते हैं; इसीलिए हम किसी साधुवेषधारीको यहाँ ठहरने नहीं देते।"

आप बोले:–" पंडितजी तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि धर्मपरायणा भारत वसुंधरासे अब धर्म उठ ही गया है। लाखों बरसोंसे जिस हिन्दुस्थानमें हजारों त्यागी मुनि होते आये हैं उसी भारतमें क्या आज उनका अभाव ही हो गया है? सुनिए,–मैं भी जैन मजहबका एक साधु हूँ। हमारे साधुओंमें द्रव्यके नाम एक फूटी बदाम भी नहीं रक्खी जाती फिर कामिनीकी तो बात ही क्या है? और तो और जिस मकानमें स्त्री रहती है उस मकानमें साधु ठहरते भी नहीं हैं। गरमीका कितना ही जोर हो, दिनभर अन्नजल

न मिले हों तो भी साधु कभी रातको अन्नजल नहीं लेते। अपने घरकी धन दौलत छोड़ मधुकरी माँगकर खाते हैं। करोडपति या गरीब सभी जैन साधुओंकी निगाहमें एकसे हैं। अपने पेट भरनेलायक आहार वे एक ही घरसे कभी नहीं लेते। विद्याप्राप्त करते हैं। कहीं एक महीनेसे अधिक चौमासेके सिवा नहीं रहते कभी किसी सवारी पर नहीं चढ़ते। पैदल सर्वत्र भ्रमण करते हैं, तीर्थ यात्रा करते हैं और लोगोंको आत्मकल्याणका रस्ता दिखाते हैं। हमारे साधुओंके जीवन और भाव तो श्रीभर्तृहरि के शब्दोंमें इस तरह के होते हैं,—

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृशादि वां॥
तृणे वा स्त्रैणे वां मम समदृशो यान्ति दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥

भावार्थ—हे प्रभो! मैं किसी ऐसे पवित्र वनमें बसना चाहता हूँ कि जिसमें रहकर सर्पको और हारको, बलवान शत्रुको और मित्रको, मणिको और पत्थरको, फूलोंकी सेजको और शिलाको, तृणको और स्त्रियोंके समूहको-सभीको समान रूपसे देख सकूँ और 'शिव' 'शिव' रटते हुए अपना समय बिता सकूँ।

इस साधुजीवनकी रूपरेखा; इस धाराप्रवाही विवेचनशैली तथा इस प्रभावोत्पादक और मधुरवाणीको सुनकर भटजी

अवाक रह गये। उन्होंने भक्तिभरे शब्दोंमें कहाः— "महाराज भूल हुई। क्षमा करें। ढोंगी साधुओंसे इतना मन खराब होगया था कि, मैं अच्छे साधुओंकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। हुक्म दीजिए कि मैं आपके लिए भोजनका प्रबंध करूँ। मैं आपको जिमाकर धन्य होऊँगा।" नौकरको पुकार कर कहाः—"यहाँ एक बत्ती ले आ।"

आप मुस्कुराये और बोलेः—"पंडितजी! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि, हम एक घरका आहार नहीं लेते, रातमें तो हम स्पर्श भी नहीं करते, रातमें चिराग़ भी नहीं जलवा सकते।"

इसके बाद पंडितजी जिस कथाको सुनाते थे उसके उस दिनके व्याख्यानकी आपने चर्चा इस ढंगसे की कि पंडितजी-को उस दिनकी कथामें की हुई भूलें भी मालूम हो गई। उन्होंने अपनी भूलें स्वीकार करते हुए कहाः—"महाराज! हम तो पेट भरनेके लिए यह कथा करते हैं। हमसे भूल हो ही जाती है" फिर भटजी भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने घर चले गये।

वहाँसे आप डफरवाल आदि गाँवोंको पावन करते हुए, सनखतरा पधारे। एक महीना वहीं रहे।

सनखतरेसे विहार करके आप नारोवाल पधारे। वहाँ धर्मकी बड़ी प्रभावना हुई। वहाँ एक भव्य जीवको आपने

सं० १९२४ के वैशाख सुदी ८ के दिन धूमधामसे दीक्षा दी। नाम 'ललितविजयजी' रक्खा।

रामनगरके अंदर जिन सर्दार कर्तारसिंहजीका वर्णन आया है, वे भी सनखतरा, सियालकोट आदि होते हुए और अनेक कष्ट झेलते हुए आपके दर्शन करने यहाँ आपहुँचे।

आपने सं० १९५४ का ग्यारहवाँ चौमासा नारोवालमें ही किया था। इस चौमासेमें आपने प्रातःस्मरणीय, न्यायांभोनिधि १००८श्रीमद्विजयानंदसूरिजी महाराजका जीवनचरित्र लिखकर तैयार किया था। यहाँ व्याख्यानमें आप श्रीउत्तराध्ययन सूत्र और पद्मचरित्र (जैनरामायण) वाँचते थे।

इस चौमासेमें आपके साथ श्रीकुशलविजयजी–बावाजी महाराज, श्रीसुमतिविजयजी महाराज, श्रीविवेकविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराज थे।

श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीलब्धिविजयजी महाराज और श्रीशुभविजयजी तपस्वीजी इन तीन मुनिराजोंका चौमासा सनखतरेमें हुआ था। नारोवाल और सनखतरेके बीचमें छःसात कोसका अन्तर है।

चौमासा समाप्त होने पर श्रीहीरविजयजी महाराज आदि नारोवाल आ मिले। नारोवालसे सभीने एक साथ विहार किया। आप अमृतसर पधारे। यहाँ अंबालानिवासी लाला गंगा-रामजी, होशियारपुरनिवासी लाला गुज्जरमलजी तथा लाला-नत्थूमलजी, अमृतसरनिवासी लाला पन्नालालजी जौहरी

और लाला फग्गूमलजी महाराजमलजी सराफ़के साथ सलाह कर हमारे चरित्रनायकको स्वर्गीय आचार्यश्रीकी गद्दीपर बिठानेका यानी आपको आचार्य पद प्रदान करनेका प्रयत्न करने लगे। लाला गंगारामजीने यह स्वीकार किया कि, वे जाकर सब साधुओंसे आपको आचार्यपद देनेकी स्वीकारता ले आयँगे। जब हमारे चरित्रनायकको इस बातकी खबर लगी तब आपने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि,–"आप वृथा ही इस बातका प्रयत्न करते हैं। मैं इस बातको कदापि स्वीकार न करूँगा।"

लाला गंगारामजी आदि बोलेः–"आप इस बातको भले स्वीकार न करें; मगर हम तो यह देख लेंगे कि स्वर्गीय गुरु महाराजकी आज्ञाको सभी मानते हैं या नहीं।" फिर वे अपने स्थानपर चले गये।

आप अमृतसरसे श्रीबाबाजी महाराज आदिके साथ विहार करके जंडियालागुरुको पधारे। यहाँ लुधियानानिवासी लाला-हरदयाल आदि जोधावालोंकी भोजाई और अंबालानिवासी लाला नानकचंद भाबूकी पुत्रीकी दीक्षा बड़ी धूमधाम से हुई। नाम देवश्रीजी रक्खा गया।

वहाँसे विहार करते हुए कई दिनोंके बाद आप पट्टी पधारे। वहाँके श्रावकोंके अत्यंत आग्रहसे आपने पट्टीहीमें चौमासा करना स्थिर किया। चौमासेमें कई महीने बाकी थे इसलिए आप श्रीबाबाजी महाराज, श्रीशुभविजयजी तपस्वी,

श्रीलब्धिविजयजी और श्रीविवेकविजयजी महाराजको वहीं छोड़ श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीस्वामी सुमतिविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराजको अपने साथ ले लाहौरकी तरफ़ रवाना हुए।

रास्तेके छोटे बड़े गाँवोंमें होते हुए जब आप बकियाँ नामक गाँवमें पहुँचे तब दुपहर हो गई थी। आपका मन उस गाँवमें प्रवेश करते ही उदास हो आया। कारण कुछ ज्ञात न हुआ। मगर थोड़ी दूर जानेपर आपने देखा कि एक मकानमें एक काटा हुआ बकरा लटक रहा है और बुरी तरहसे लोग उसके टुकड़े कर रहे हैं। आपका दयापूर्ण हृदय भर आया, मुखसे एक निःश्वास निकला और अपने साथके साधुओंसे बोलेः—" यह गाँव साधुओंके ठहरने लायक नहीं है।" मगर धूप तेज थी, साथके साधु थक गये थे इसलिए विवश धर्मशालाकी एक कोटड़ीमें जा ठहरे।

आप इस बातको सोच रहे थे कि इस क्रूरताको करनेवालेजीवोंका कैसे कल्याण होगा। इतनेहीमें मदिरामें मत्त हाथोंमें भाले लिए हुए कई पुरुष उधरसे निकले। उनके वार्तालापसे मालूम हुआ कि वे शिकार करने जा रहे हैं।

थोड़ी ही देरमें वहाँ एक स्त्री आई और प्रणाम करके बोलीः—" सन्तो! तुम यहाँसे चले जाओ। यह गाँव चोरोंका है। मेरा स्वामी दिनमें मुसाफ़िरोंको आराम पहुँचाता है मगर

रातमें गाँवके दूसरे लोगोंके साथ मिलकर मुसाफिरोंका सर्वस्व छीन लेता है। अगर प्राण लेने पड़ते हैं तो इसमें भी वह आगा पीछा नहीं करता। यद्यपि अपने पतिकी बुराई करना स्त्रीके लिए पाप है तथापि मैंने आपके सामने की है। इसके दो कारण हैं, एक तो यह कि, मेरे पति साधुको दुख देनेसे जो पाप लगेगा, उससे बचेंगे और दूसरा साधुकी रक्षा होगी।"

आपके साथ तीन साधु थे और ७, ८ श्रावक। आपने उनसे मशवरा किया। इतनेहीमें वहाँ एक वृद्ध सिक्ख आ गया। उसने कहाः—" महाराज! मै आपको यही सम्मति दूँगा कि आप यहाँसे चले जाइए।"

श्रावक बोलेः—" महाराज! यदि आप चल सकते हों तो हमारी कोई हानि नहीं है; भले चले चलिए, अन्यथा यहीं रहिए। चोर भी तो इन्सान हैं। हम देख लेंगे।"

आप बोलेः—" लाला तुम्हारा कहना ठीक है। मगर मैं विना प्रयोजन किसीके प्राण खतरेमें डालना नहीं चाहता। अगर हम सब साधु ही होते तो हमें कोई चिन्ता न थी। हमारे पाससे चोर आकर क्या ले जाते? मगर आप लोग हैं इसलिए मैं यह जोखम उठाना ठीक नहीं समझता।"

आखिरकार खरे तड़केमें आप वहाँसे रवाना हो गये और आठ कोसकी कठिन मुसाफिरी पैदल, नंगे पैर, तै करके संध्याको मियाँमीरकी छावनीमें पहुँचे।

लाहोर छावनी और शहरमें पाँच मीलका अन्तर है। लाहोर छावनीका दूसरा नाम ही मियाँमीरकी छावनी है। अगले दिन आप शहरमें पधारे। श्रीजिनमंदिरके पास ही वहाँ एक पंचायती मकान (उपाश्रय) है। उसीमें आप ठहरे। एक महीना यहीं विताया। आजतक लाहोरमें एक भी मुनिराज इतने समयतक नहीं ठहरे थे। कारण वहाँ पुजेरे श्रावकोंके केवल एक दो ही मकान उस वक्त थे। यह समाचार मिलने पर कि, वल्लभविजयजी आदि लाहोरमें ठहरे हुए हैं १०८ श्रीचरित्रविजयजी महाराज, और १०८ श्रीउद्योतविजयजी महाराज आदि वृद्ध साधुओंके पत्र इस आशयके आने लगे कि, लाहोरमें पुजेरे (मंदिर आम्नायवाले) हीरालाल मुन्हानी वगैरहके एक दो ही घर हैं, फिर तुम इतने दिन तक वहाँ क्यों ठहरे हो? साथके साधु तो सभी सुखसातामें हैं न?

उत्तरमें आपने लिखा,—"सभी मुनि यहाँ सुखसातामें हैं। यहाँ रहनेमें कुछ लाभ दिखाई देता है इसी लिए हम लोग यहाँ ठहरे हुए हैं। हमेशा व्याख्यान होता है। व्याख्यान सुननेके लिए जौहरियोंके परिवारमेंसे वाबू नत्थूमल, वाबू मोतीलाल, लाला बुलाकीमल आदि कई भाई और बहनें आते हैं। संभव है इस समयका वोया हुआ वीज भविष्यमें फलदायी हो। दिल्लीवाले लाला महतावरायजीके परिवारमेंसे कई यहाँ सरकारी नौकर हैं। वे और उनके घरकी सन्नारि-

यों भी व्याख्यानमें आया करते हैं। यद्यपि ये सभी अग्रवाल दिगंबर जैन हैं तथापि स्वर्गवासी गुरुमहाराजको जैनधर्मके प्रभावक पुरुष समझते हैं। इसलिए इनका हार्दिक प्रेम है। आहार पानीकी खास कोई तकलीफ नहीं है। वैसे यह तो आप जानते ही हैं कि, विना कष्ट सहे कभी नवीन क्षेत्र तैयार नहीं हो सकता है ?"

समयकी बलिहारी है! आपका बोयाहुआ बीज फल लाया। लाहोरमें आज अनेक घर हैं। इतना ही क्यों लाहोरवालोंने अपने यहाँ गत वर्षकी प्रतिष्ठा कराने और हमारे चरित्रनायकको आचार्य पद प्रदान करनेका सौभाग्य भी प्राप्त किया है। सविस्तर वर्णन आगे होगा।

लाहोरसे विहार कर कसूर पधारे। वहाँ एक मास तक रहे। फिर कसूरसे आस पासके लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए आपने पट्टीकी तरफ़ विहार किया।

कसूरसे पट्टी जाते रास्तेमें 'चठयाँ वाला' गाँव आता है। वहाँ हीरासिंह नामक सिक्ख सर्दार रहता है। वह बड़ा ही वली है। २७ मन की मुद्गरें फेरा करता है। आपने यह बात सुनी थी। आप एक दिन सायंकाल ही अपने शिष्य ललितविजय-जीके साथ जंगलसे उसी तरफ़से लौटे जिसतरफ़ वह सर्दार रहता है। एक मकानके बाहरकी तरफ लोहेकी दो मुद्गरें पड़ी थीं। उसके पास एक हृष्ट पुष्ट जवान बैठा था। आपने अनुमान

कर प्रश्न कियाः—" क्या सर्दार हीरासिंह आपहीका नाम है ? "

सिक्ख लोग साधुओंका बहुत सम्मान करते हैं। सर्दार उसी अपने जातीय नम्र भावसे हाथ जोड़कर बोलाः—"हाँ महात्मा ! इस दासहीको हीरासिंह कहते हैं। "

आपने कहाः—" सर्दारजी ! हमने आपके बलकी बहुत तारीफ सुनी है। "

हीरासिंहने नम्रताके साथ कहाः—" यह संत पुरुषोंकी महरबानीका फल है। "

आप वहाँसे विहार करते हुए पट्टी पहुँचे और—

सं० १९५५ का बारहवाँ चौमासा आपका पट्टीमें हुआ।

चौमासा बड़े आनंदसे समाप्त हुआ। इस चौमासेमें आपके साथ बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजी, श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीसुमतिविजयजी महाराज, श्रीशुभविजयजी तपस्वी, श्रीलब्धिविजयजी महाराज, श्रीविवेकविजयजी महाराज और श्रीललितविजयजी महाराज ऐसे सात साधु थे। पं० उत्तमचंदजी तथा पं० अमीचंदजीका सुयोग मिलनेसे तत्वचर्चाका बड़ा आनंद रहा।

× × × ×

(सं० १९५६ से सं० १९६० तक)

चौमासा समाप्त होने पर आप पट्टीसे विहार कर जीरे पधारे

यहाँसे श्रीशुभविजयश्री तपस्वी और श्रीविवेकविजयजी[1] महाराजने आपकी आज्ञासे मारवाड़ गुजरातकी तरफ़ विहार किया।

आप जीरासे विहार कर जगराँवाँ, लुधियाना आदि

१—इनका गृहस्थ नाम डाह्या भाई था। ये मु० वलाद जिला अहमदाबादके रहनेवाले थे। इनकी माताका नाम श्रीमती अंबा बाई और पिताका नाम सेठ डूँगर भाई था। इनका जन्म फाल्गुन वदी २ सं० १९२४ के दिन हुआ था। शाहपुरमें इनके पिताकी दुकान थी। वहीं ये रहते थे। वहाँ खीमचंद पीताबर नामका एक धर्मात्मा श्रावक था। उसीके सहवाससे इन्हें वैराग्य हुआ। इनके लग्न हो गये थे। ये दीक्षा लेने एक बार पूना चले गये थे; मगर इनके पिताने खबर पाकर वापिस बुला लिया। एक बार ये अहमदाबादमें धर्मात्मा सेठ सवचंद-भाई लालचंदभाईके पास गये और अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने इन्हें आत्मारामजी महाराजसे दीक्षा लेनेकी सम्मति दी और आत्मारामजी महाराजके शिष्य कान्तिविजयजी महाराज आदिके पास जानेके लिए कहा। तदनुसार मौका देखकर ये कान्तिविजयजी महाराजके पास आबू पहुँचे। कान्तिविजयजी महाराजने इन्हें पंजाबमें भेज दिया। ये पंजाबमें हमारे चरित्रनायकके पास जँडियाला पहुँचे। अपनी इच्छा प्रकट की। आपने इनके घरवालोंको एक रजिस्टर्ड पत्रद्वारा सूचना दी कि डाह्याभाई हमारे पास दीक्षा लेने आया है। इनके ससुरे छगनलाल, इनके बड़े भाई मूलचंद और एक तीसरा आदमी तीनों जंडियाला पहुँचे। इन्हें घर चलनेको बहुत समझाया। मगर ये एकके दो न हुए, तब उन लोगोंने कोर्टमें नालिश की। हाकिमने इन्हें बुलाया और तेहक़ीक़ात करनेके बाद अपनी इच्छानुसार वर्ताव करनेकी इजाजत दे दी। इनके ससुर आदि तीनों अपने घर लौट गये। फिर सं० १९४८ की मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमीको सूरिजी महाराजने इन्हें पट्टीमें दीक्षा दी। नाम विवेकविजयजी रक्खा: हमारे चरित्रनायकके यही प्रथम शिष्य हुए। ये बड़े ही गुरुभक्त और धर्मपरायण हैं। अभी गुजरातमें विचरते हैं। पंन्यासजी श्रीललितविजयजी महाराजने एक बार हमसे कहा था कि— " ये बड़े ही शान्त प्रकृति और निर्लेप हैं। आत्मसाधनाके सिवा इन्हें किसी भी बातसे सरोकार नहीं है।"
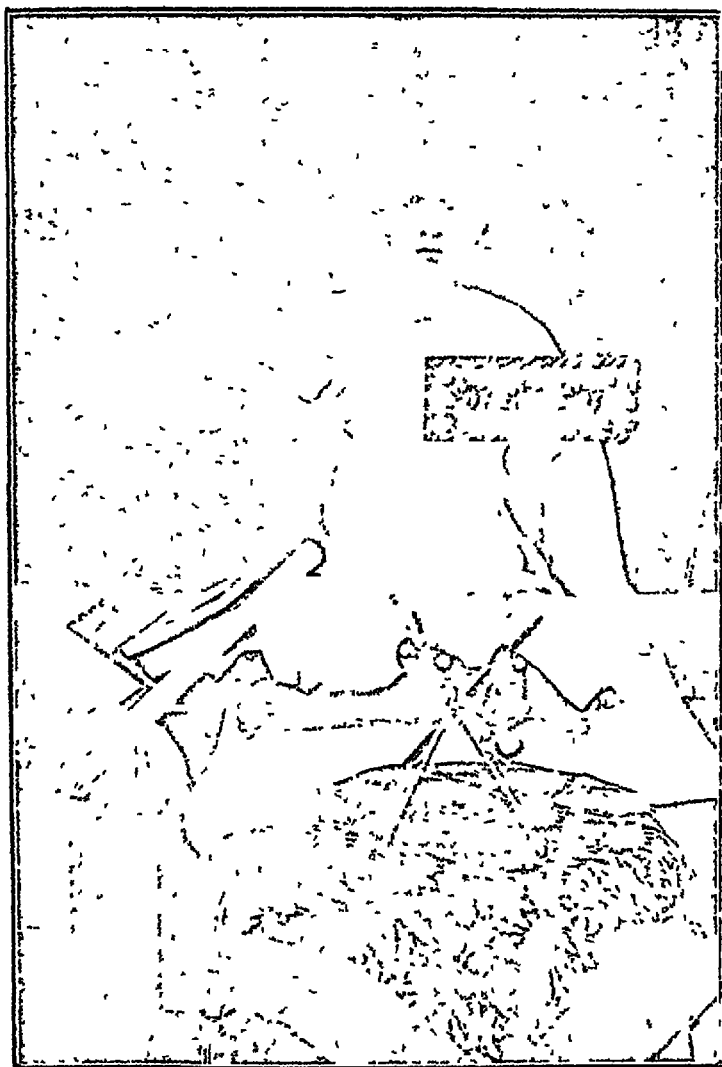
मुनि महाराज श्रीविवेकविजयजी (तपस्वी)

१००८ आचार्य महाराज श्रीमद्विजय वल्लभसूरिजीके मुख्य शिष्य   पृ. १२०

स्थानोंमें लोगोंको विशेष रूपसे धर्ममें लगाते हुए मालेर कोटला पधारे।

सं० १९५६ का तेरहवाँ चौमासा आपका मालेरकोटलामें हुआ। व्याख्यानमें आप सम्यक्त्व सप्ततिका और सूत्रकृतांग वाँचते रहे। यहाँ मुन्शी अब्दुल्लतीफ़ नामके एक मुसलमान सज्जन आपके गाढे भक्त वन गये। धर्मचर्चामें उन्हें वड़ा आनंद आता था; इस लिए वे हमेशा आते और दुपहरका प्रायः समय आप उनके साथ धर्मचर्चामें ही विताते।

उन्होंने एक दिन हाथ जोड़कर प्रार्थना की,—"महाराज आप जैसे भावड़ोंके गुरु हैं वैसे ही मेरे भी गुरु हैं। फिर आप-भेदभाव क्यों रखते हैं? मैं आपसे मेरे घरका आहार लेनेके लिए नहीं कहता। मेरी तो सिर्फ इतनी ही अर्ज है कि आप मेरी गायोंका एक दिन दुग्ध ग्रहण करें। आप पधारेंगे तव मैं हिन्दुसे गौ दुहा दूँगा।"

आपने हँसकर कहाः—"मुन्शीजी! आप जानते हैं कि हमारे लिए जो पदार्थ प्रस्तुत किया जाता है वह हम नहीं लेते। मुझे तो आपकी भक्ति दूध क्या अमृतसे भी ज्यादा प्यारी है।"

चौमासा समाप्त होने पर आप मालेरकोटलासे नाभा पधारे। यद्यपि यहाँ श्रावकोंके घर थोड़े थे तथापि आपकी वाणीमें वह जादू है कि जो आपका एक वार उपदेश सुन लेता है वह हमेशाके लिए आपका भक्त वन जाता है। नाभानरेशके

बालमित्र और पूर्ण विश्वासपात्र लाला जीवारामजी मालेरी आपके ऐसे भक्त बने कि, सिरपर राजकीय कामोंका अत्यंत बोझा रहने पर भी जबतक वे घंटा आध घंटा आपके पास न आते थे तबतक उन्हें चैन नहीं पड़ता था। वहाँके प्रसिद्ध व्यापारी लाला फतेचंदजी घुरांटोंवाले भी आपके ऐसे ही भक्त बन गये। इनके अलावा और भी अनेक लोग हमेशा आपके वचनामृतका पान करने आते थे।

नाभासे विहार कर आप सामाना, पटियाला, अंबाला होते हुए रोपड और रोपड़से होशियारपुर पधारे। यहाँके श्रीसंघने स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी (आत्मारामजी) महाराजकी एक प्रतिमा बनवाई थी। उसकी प्रतिष्ठा करानेहीके लिए, श्रीसंघके अत्यंत आग्रहसे, आप यहाँ पधारे थे। सं० १९५७ के वैशाख सुदी ६ के दिन बड़े समारोह एवं शान्तिके साथ प्रतिष्ठाका कार्य समाप्त हुआ।

सं० १९५७ का चौदहवाँ चौमासा आपका होशियारपुरमें हुआ। पंजाबके श्रीसंघने आपको इस साल आचार्य पदवी देना निश्चित कर आपसे निवेदन किया। आपने झट-पट इन्कार कर दिया।

श्रीसंघने कहाः—" हम तो स्वर्गीय गुरु महाराजकी आज्ञाका पालन करना चाहते हैं। हमने जब पूछा कि, गुरुवर्य आप हमें किसके भरोसे छोड़ कर जाते हैं, तब गुरुदेवने फर्माया

था,—" तुम चिन्ता क्यों करते हो ? मैं तुम्हें वल्लभके भरोसे छोड़ जाता हूँ। वह मेरी कमी पूरी करेगा।"

आपने भक्तिभावसे स्वर्गीय गुरुचरणोंमें प्रणाम कर कहा:— "वे वड़े थे। उनकी आज्ञाका पालन करनेमें मैं कभी आगा पीछा नही करता। मैं तो क्या मेरे जैसे हजार वल्लभ-विजय भी उनकी कमीको पूरा न कर सकेंगे। कहाँ वे शासन-सूर्य और कहाँ मैं टिम टिमाता हुआ दीपक ? सूर्यके अभावमें चिराग़ भी कुछ उपयोगी हो ही जाता है; उसी प्रकार मैं भी आपको धर्मकार्यमें लगाये रखनेके काममें उपयोगी हो सकता हूँ। मगर इतनेहीसे मैं अपने आपको गुरु-गद्दी-पर वैठनेके योग्य नहीं समझता। गुरु महाराजके और भी शिष्य हैं। कई मुझसे दीक्षा पर्यायमें वड़े हैं। उनमेंसे आप इस पदके लिए किन्हींको चुन लीजिए। इस तरह मेरा विरोध होने पर भी यदि आप लोगोंका आग्रह ही है तो समस्त मुनि-राजोंसे सम्मति ले लीजिए। यदि सवकी राय होगी तो मैं विचार करूँगा। उस वक्त लाला गंगारामजीने कहा;—"मैं मारवाड़ गुजरात आदिमें जाकर प्रायः सव साधुओंसे सम्मति ले आया हूँ। सवने प्रसन्नताके साथ कहा है कि, आप ही इस पदको सुशोभित करनेके योग्य है।

"हाँ एक कान्तिविजयजी महाराजने दूसरी ही सम्मति दी है। उन्होंने कहा है कि,—वल्लभविजयजी इस पदके सर्वथा योग्य हैं। इसका मैं विरोध नहीं करता। जैसे वे अद्वितीय

गुरु भक्त हैं वैसे ही वे विद्वान और वक्ता भी हैं। तो मैं उन्हें आचार्य पद देनेमें सम्मत नहीं हूँ। कारण,—वे दीक्षा पर्यायमें कई मुनियोंसे छोटे हैं। मान लो कि हमने उन्हें आचार्य पदवी दी और एक दो साधुओंने इन्कार कर दिया तो इसका फल क्या होगा? आपसी विरोध से दो दल हो जायँगे। मुझे गुरु महाराजके संघाड़ेमें दो दल हों यह बात बिलकुल मंजूर नहीं है। मुझे विश्वास है कि, वल्लभविजयजी भी यही चाहते होंगे; क्योंकि मैं उनकी महत्ता और शासनभक्ति जानता हूँ। इस लिए मेरी सम्मति है कि, यह पद मुनि श्रीकमलविजयजीको दिया जाय; क्योंकि वे दीक्षा पर्यायमें बड़े हैं। ज्ञाता भी अच्छे हैं और वयोवृद्ध भी हैं।"

आप तो पहले ही कह चुके थे कि मैं यह पद स्वीकार न करूँगा। संसारके कार्य बहु सम्मतिसे हुआ करते हैं। इसीके अनुसार अनेक श्रावकों और मुनियोंने आग्रह किया कि आप इस पदको स्वीकार कर लें; मगर आप सम्मत न हुए, यही कहते रहे कि, गुरु—"महाराजके समुदायको एकताके सूत्रमें बाँधकर रखना मेरे लिए और मेरे साथ ही आप सभीके लिए महान कार्य है। इस लिए आप सभी इस कार्यको कीजिए। मैं आचार्य न बननेसे आपको धर्मकार्यमें मदद न दूँगा, इस तरहकी शंका यदि किसीके दिलमें हो तो उसे निकाल दीजिए।"

उ. सोहनविजयजी चरित्रनायक. वृद्ध म. सुमतिविजयजी

मनोरंजन प्रेस बम्बई.

वृद्ध मुनिराज बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजी, मुनि श्रीचारित्रविजयजी, मुनि श्रीप्रमोदविजयजी, मुनि श्रीहीरविजयजी और मुनि श्रीउद्योतविजयजी, स्वामीजी श्रीसुमतिविजयजी आदि मुनिगणका आग्रह था कि, हम वल्लभविजयजीहीको आचार्य बनायँगे और मानेंगे। उन्हें बड़ी कठिनतासे आपने समझाया और फिर एक सम्मति-पत्र लिख उस पर आपने सबसे पहले सही की, सब साधुओंकी सही करवाई और वह कान्तिविजयजी महाराजके पास पाटन भेज दिया।

वाह ! क्या त्याग है ? संसारमें धन-दौलत पुत्र कलत्र और गृहस्थाश्रम छोड़ देना सरल है मगर मान–बड़ाईका त्याग करना, बड़ा ही कठिन काम है। उसमें भी आचार्यके समान दुष्प्राप्य पदवीको–जो विरलोंहीको मिला करती है–छोड़ देना वह भी ऐसी दशामें जब कि अपने पक्षमें बहु सम्मति हो छोड़ देना, एक दुःसाध्य साधना है। मगर हमारे चरित्रनायकने उसको साधा; एकताके सूत्रमें सबको बाँधे रखनेके लिए आपने यह महान त्याग किया।

इस सम्मतिपत्रके पहुँचनेपर सं. १९५७ की माघ सुदी १५ के दिन पाटन (गुजरात) में १०८ श्री कमलविजयजी महाराजको सूरि पद प्रदान कियागया।

पाटन पदवीप्रदान महोत्सवके समय पंजाब श्रीसंघमेंसे कोई भी श्रावक सम्मिलित न हो सका था। केवल गुजराँवा-

लाके एक सज्जन शामिल हुए थे। कारण पंजाबका श्रीसंघ उस समय जंडियालेमें प्रतिष्ठा उत्सव पर गया हुआ था।

१०८ श्रीकमलविजयजी महाराजकी इच्छा थी कि उपाध्याय पद हमारे चरित्रनायकको दिया जाय; मगर हमारे चरित्रनायकने उसे लेना नामंजूर किया।

इस साल स्थानकवासियोंके पूज्य श्रीसोहनलालजी भी होशियारपुरहीमें थे। उनके साथ शास्त्रार्थकी बात छिड़ी थी; मगर अन्तमें वह ढीली पड़ गई! वे शास्त्रार्थ करनेको तैयार न हुए।

× × × ×

चौमासा समाप्त होने पर आप होशियारपुरसे विहारकर, गढ़दिवाला, उरमड, अइयापुर, टाँडा, मियानी आदि स्थानोंमें होते हुए जंडियाले पधारे। आपके पधारनेका हेतु था यहाँ होनेवाली मंदिरजीकी प्रतिष्ठा। माघ सुदी १३ सं० १९५७ को प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठाका सारा काम आप हीकी देखरेखमें हुआ था। इस अवसर पर आपने पचास जिन बिंबोंकी अंजनशलाका भी की थी। स्वर्गवासी आचार्यश्रीने अपनी देखरेखमें आपको जो कार्य सिखाया था वह आज सफल हो गया।

यहाँ प्रतिष्ठा महोत्सव पर समस्त पंजाबका श्रीसंघ आया था। उससे आपने पाइफंडको समृद्ध बनानेके लिए एक फंड जारी कराया। संघने अपनी शक्तिके अनुसार उसमें

पृ. १२७

मनोरंजन प्रेस, बम्बई नं. ४.

रुपया देना स्वीकार किया। कइयोंने उसी समय नकद रुपये भी दे दिये।

यहाँकी प्रतिष्ठा समाप्त होने पर मुनि श्रीलब्धिविजयजी और मुनि श्रीललितविजयजी[1]ने आपकी आज्ञानुसार मारवाड़ गुजरातकी तरफ़ विहार किया।

१-इनका जन्म गुजराँवाला जिलेके रहनेवाले श्रीयुत दौलतरामजीके घर हुआ था। सं. १९३७ में इनका जन्म हुआ था। इनका नाम लछमणदास था। इनके पुरखा महाराजा रणजीतसिंहजीके जमाने तक बहुत बड़े जमींदार रहे थे। इनके पिता अपने इन इकलौते पुत्रको छोड़ कर परलोकवासी हो गये थे। गाँवमें लाला चूड़ामल भगत रहते थे। वे जातिके ओसवाल और पक्के बालब्रह्मचारी एवं जैनधर्मधारी थे। उनका और दौलतरामजीका गाढ़ा स्नेह था। इसलिए दौलतरामजीके मरने पर उन्होंने इन्हें अपने पास रखकर जैनधर्मके रंगमें रंगना प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनोंमें पक्के शैवका लड़का दृढ जैनधर्मधारी बन गया। इनका मन जब वैराग्यमें सन गया तब भगतजीने इन्हें गुजराँवालामें आकर हमारे चरित्र-नायकके भेट कर दिया। हमारे चरित्रनायकने ग्यारह महीने अपने पास रख, भव्य जीव समझ स.१९५४ के वैशाख सुदी ८ के दिन नारोवालमें इन्हें दीक्षा दी। नाम 'ललितविजयजी' रक्खा। ये हमारे चरित्रनायकके द्वितीय, आपके (हमारे चरित्रनायकके) शिष्योंमें, अद्वितीय गुरुभक्त हैं। आप जैसे विद्वान हैं वैसे ही अच्छे गायक भी हैं। जिस समय आप भक्तिपूर्ण हृदयसे मंदिरजीमें पूजा पढाते उस समय श्रोता लोग मंत्रमुग्ध सर्पकी भाँति तल्लीन हो जाते हैं। इनके व्याख्यान भी बड़े ही प्रभावोत्पादक होते हैं। गुरुदेवकी आज्ञा, अनेक कष्ट उठाकर भी पालन करनेको ये हर समय तैयार रहते हैं। ये कहा करते हैं,-"गुरुमहाराजके मुझपर इतने उपकार हैं कि उनके हुक्मको पालते हुए यदि मेरा देहपात हो जाय तो भी मैं उनसे उऋण न होऊँ।" सं० १९७९ में बाली (मारवाड़) में गुरु महाराजके समक्ष ही इन्हें पंन्यास सोहनविजयजी महाराज ने, पंन्यास पदसे विभूपित किया। इनके साथ ही मुनि श्रीउमंगविजयजी महाराज और मुनि श्रीविद्याविजयजी महाराज भी पंन्यास पदसे विभूपित किये गये थे।

आप जंडियालासे विहार कर अन्यान्य गाँवोंके जीवोंको धर्मामृत पिलाते हुए अमृतसर पधारे । वहाँ पर 'आत्मानंद जैन पाठशाला पंजाब' की योजना करनेके लिए सं. १९५८ के वैशाख सुदी ११ ता० २९ अप्रेल सन् १९०१ ईस्वीको बाबाजी महाराज श्रीकुशलविजयजीके सभापतित्वमें एक सभा हुई । उसमें आपने श्रावकोंको उत्साहित करनेवाला एक छोटासा व्याख्यान दिया था । उसका श्रावकों पर बड़ा प्रभाव हुआ और उस समय जो पाँच प्रस्ताव आपकी सम्मतिसे पास किये गये उनको उपयोगी समझकर हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं

(१) शहर जंडियालेमें प्रतिष्ठामहोत्सवके समय 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव' के लिए जो फंड श्रीसंघ पंजावने स्थापित किया है उसमें जिन जिन शहरोंने अपने नाम चंदेमें नहीं लिखाये हैं उन शहरोंको चंदा देना चाहिए ।

(२) पहली मई सन् १९०१ से प्रत्येक नगरके श्रद्धालु सेवकोंको चाहिए कि वे अपनी शक्तिके अनुसार प्रति दिन कमसे कम एक पाई इस फंडमें जरूर दें । ज्यादा इच्छानुसार दे सकते हैं । यह नियम अभी दस वरस तक के लिए किया जाता है ।

(३) 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के लिए पुत्रके विवाह पर पाँच रुपये और पुत्रीके विवाह पर दो रुपये निकाले जाया करें । अधिक निकालनेका हरेकको अखतियार है ।

(४) विवाहके समय जैसे श्रीजिनमंदिरजीमें रुपये चढ़ाया करते हैं वैसे ही 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के नाम भी चढ़ाया करें। क्योंकि प्रायः पंजाव देशमें सव स्थानों पर श्रीजिनमंदिर वन गये हैं, वन रहे हैं और सव तरहके खर्चेका काम चल जाता है, इसलिए ज्ञानके उद्धारका ध्यान करना भी श्रीसंघका उचित आचरण है।

(५) पर्युषणोंके दिनोंमें कल्पसूत्रकी वोलियाँ और ज्ञान पंचमी वगैरहका जो कुछ ज्ञानसंवंधी चढ़ावा होता है, वह 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के फंडमें शामिल होना चाहिए।

(६) चातुर्मास आदिमें साधु मुनिराजोंके दर्शनार्थ जो श्रावक आते हैं वे जैसे श्रीजिनमंदिरमें चढ़ाते हैं वैसे ही उस समय 'श्रीआत्मानंद जैनपाठशाला पंजाव' के नाम भी, न्यूनाधिक जैसा वन सके, कुछ चढ़ावा चढ़ाया करें।

उस साल यानी सं० १९५८ का पन्द्रहवाँ चौमासा आपने अमृतसरहीमें किया था। यहींसे आपने 'आत्मानंद जैनपत्रिका' में श्रीगौतमकुलकका हिन्दी रूपान्तर निकलवाना प्रारंभ किया। इसी चौमासेमें कार्तिक सुदी १४ के दिन वृद्ध महात्मा मुनि श्री १०८ कुशलविजयजी (वावाजी) महाराजका देवलोक हो गया। इनमें वैयावृत्त्यका जो गुण था वह श्रीआत्मारामजी महाराजके संघाड़ेके साधुओंमें तो क्या अन्य भी किसी संघाड़ेके साधुओंमें नहीं है।

अमृतसरका चौमासा समाप्तकर आप २१ दिसंवर सन् १९०१ ईस्वीको लाहोर पधारे आपके साथ मुनि श्रीहीरविजयजी महाराज और मुनि श्रीसुमतिविजयजी महाराज थे। लाहोरमें आपने सूयगडांग सूत्रका व्याख्यान प्रारंभ किया था। आप सं० १९५५ में जिस उपाश्रयमें ठहरे थे, इस वार भी उसी पंचायती उपाश्रयमें ठहरे थे।

यहाँ 'आत्मानंद जैन सभा पंजाव' का दूसरा वार्षिकोत्सव आपकी उपस्थितिमें हुआ। आपने उपदेश देकर यहाँ उन सभी प्रस्तावोंको पुनः पास करवाया जो अमृतसरमें हो चुके थे। तीसरे प्रस्तावमें पाँच और दो रुपयेकी जगह एकसे लेकर पाँच रुपये तक इच्छानुसार निकालना लिखा है। चौथे प्रस्तावमें विशेष फ़र्क है इसलिए उसकी पूरी नक़ल यहाँ दी जाती है।

(४)—"विवाहके समय श्रीजिनमंदिरजीमें जो रकम वराती चढ़ावें सो 'श्रीजिनमंदिरजी' तथा 'श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव, के नामसे (चढ़ावें और) जमा करें। खास गुजराँवालाके वास्ते श्रीसंघ पंजावकी यह सम्मति है कि, जो रकम वराती चढ़ावें उसको (१) श्रीजिनमंदिरजी (२) श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव और (३) श्री १००८ श्रीगुरुदेवजी महाराजकी समाधिके नामसे चढ़ावें और शहर गुजराँवालाका श्रीसंघ उसको वरावर तीन हिस्सोंमें तीनोंहीके नामसे जमा करे।"

पाँचवें प्रस्तावमें पर्युपणोंका ज्ञानसंबधी चढ़ावा ' श्रीआत्मानंद जैन पाठशाला पंजाव ' हीमें देनेकी बात थी वह वदल दी गई और उसकी जगह यह स्थिर हुआ कि चढ़ावेका आधा हिस्सा ' पाठशाला पंजाब ' में और आधा अपने शहरके ' ज्ञानखाते ' में दिया जाय ।

एक महीने तक लाहोर निवासियोंका उपकार कर ता. १९ जनवरी सन् १९०२ को आपने वहाँसे विहार किया । मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी और मुनि महाराज श्रीसुमतिविजयजी सहित आप ग्रामानुग्राम विचरते हुए लुधियाना पधारे । यहाँके श्रावक आपके आगमनसे बड़े हर्षित हुए । आपके वचनामृत पानकरनेके लिए सारे ही गाँवके नरनारी सवेरे व्याख्यानमें आया करते थे ।

लुधियानेमें एक मास तक अमृत वर्षाकी और वहाँसे विहार करके आप फाल्गुन वदी १३ सं० १९५८ को कसूर पधारे और वहाँके लोगोंको धर्म-पीयूष पिलाने लगे । आपके उपदेशसे वहाँ फाल्गुन सुदी १० को शांतिस्नात्र पूजा पढाई गई और लाला जीवनलालने 'सधर्मी वात्सल्य' किया । यह बात कसूरके लिए सबसे पहली ही थी ।

कसूरसे आप विहार कर अमृतसर और अमृतसरसे जंडियाले पधारे । वहाँ सं. १९५८ के आपाढ़ वदी ५ गुरुवार ता. २६ जून सन् १९०२ ईस्वीको वड़ी धूम धामसे दो व्यक्तियोंकी दीक्षा हुई । उनका नाम विनोदविजयजी और विमलविजयजी रक्खा गया ।

जंडियालेसे आप चौमासा करनेके लिए पट्टी पधारे। संवत १९५९ का सोलहवाँ चौमासा आपने पट्टीहीमें किया। पट्टीमें आपके उपदेशसे स्वर्गीय आचार्य महाराजकी स्वर्गवास तिथिके दिन और संवत्सरीके दिन दुकानें बंद रखने और आरंभसे बचनेका सारे संघने नियम किया।

पट्टीसे विहार करके आप जीरा पधारे। जीरामें, आपने श्रीजैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित 'साधुप्रति-क्रमण' नामका ग्रंथ देखा। उसमें सालमें दो बार यानी हर छठे महीने, साधुओंके लिए कायोत्सर्ग करनेका विधान किया-गया था। आपने इस लेखमें एक भूल देखी और 'आत्मानंद जैन पत्रिकामें'—जो उस समय लाहोरसे प्रकाशित होती थी,-एक सूचना प्रकट कराई और उसके द्वारा यह सिद्ध किया कि वर्षमें एक ही बार और वह भी चैत्रके महीनेहीमें कायोत्सर्ग करनेकी शास्त्र-आज्ञा है। अपने कथनकी पुष्टिमें आपने 'सामाचारी शतक' और 'आवश्यक प्रतिक्रमण अध्ययन' के पाठ भी दिये। इस सूचनामें आपने जामनगर निवासी पंडित हीरालाल हंसराज द्वारा लिखित 'जैनधर्मनो प्राचीन इतिहास' नामक पुस्तकके विषयमें भी लिखा है कि, उसमें कई बातें अनुचित और गलत हैं। आपने संघसे अपील की थी कि, एक ऐसी कमेटी बनाई जावे कि, जो जैनधर्मसे संबंध रखने वाले ग्रंथोंको आद्योपान्त देख ले और जबतक वह देख कर पास न कर दे तबतक कोई ग्रंथ—एक छोटासा पेम्प्लेट भी—जैनधर्मके विषममें प्रमाणित न माना जावे।

जीरासे विहार करके आप मालेरकोटला पधारे। वहाँ कई दिनों तक आप भक्तोंको जिनवचनामृतका पान कराते रहे। वहाँसे विहार करके ग्रामानुग्राम विचरते, जैन धर्मकी प्रभावना करते और उपदेशामृतकी वर्षा करते हुए आप अंबाला पधारे और सं १९६० का सत्रहवाँ चातुर्मास आपने अंबालेहीमें किया। यहाँ आठ और नौ अगस्त सन् १९०३ को आत्मानंद जैन सभा पंजाबका जल्सा हुआ था। सभापतिका स्थान आपने सुशोभित किया था।

होशियारपुरके सरकारी गेजेटियरमें किसी लेखकने—जिसको जैन धर्म और उसके पालनेवालोंका कुछ परिचय नहीं था—भावड़ोकी यानी ओसवालोंकी शूद्रोंमें गिनती कर डाली थी। इस भूलको सुधरवानेके लिए आपने उपदेश देकर एक कमेटी बनवाई। इस कमेटीमें बाबू लेखूराम आदि कई सज्जन थे। कमेटीने प्रयत्न करके सफलता प्राप्त कर ली।

उसी वर्ष बंबईमें श्वेताम्बर जैन कॉन्फरन्स होनेवाली थी। आपने कॉन्फरन्समें भाग लेनेका उपदेश दिया। इस पर पंजाबके प्रत्येक शहरमेंसे प्रतिनिधि भेजना स्थिर हुआ। तबसे प्रत्येक कॉन्फरन्समें पंजाबके प्रतिनिधि जाते रहे हैं।

इस चौमासेमें अंबालाशहरमें एक पाठशाला खोली गई। उसका नाम 'श्रीआत्मानंद जैन पाठ शाला' रक्खा गया। वह धीरे धीरे उन्नत होकर अब हाई स्कूल बन गई है। आपके उपदेशसे यहाँ और भी अनेक कार्य हुए थे।

अंबालेसे विहार करके आप सामाना (पटियाला स्टेट) में पधारे। वहाँ उस समय मूर्तिपूजक श्रावकोंके केवल पाँच ही घर थे। बाकी सभी स्थानकवासी थे। फिर भी बड़ी धूमधामके साथ आपका नगर प्रवेश हुआ। अन्य धर्मावलंबियोंकी काफी तादाद् आपके स्वागतार्थ जुलूसमें शामिल हुई। कई कुतूहलवश आये थे, कई भक्तिवश आये थे, कई प्रख्यात साधुवरके दर्शनकरनेकी इच्छासे आये थे कई आपके वचनामृतका पान करने आये थे और कई श्रावकोंके मुलाहजेसे जुलूसमें शामिल हो गये थे।

उपाश्रयमें पहुँचकर आपने धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर लोग मुग्ध हो गये। फिर तो सभी हमेशा आपका उपदेशामृत पान करने आने लगे। कई स्थानकवासी भाई भी अपनी भूलको सुधारकर पुनः वीतरागके शुद्ध धर्ममें सम्मिलित हो गये।

वहाँ सुरजनमल नामके एक स्थानकवासी श्रावक थे। वे एक दिन महाराज साहबके पास आये और चर्चा करने लगे। मगर दो चार प्रश्नोत्तरहीमें उनका सारा ज्ञान समाप्त हो गया। तब उन्होंने आपसे कहाः—" यदि आप हमारे पूज्य श्रीसोहनलालजीसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हों तो मैं उन्हें बुलाऊँ। यदि वे हार जायँगे तो मैं भी श्वेतांबर बन जाऊँगा और यदि आप हार जायँ तो आप स्थानकवासी हो जाइएगा।"

आप मुस्कुराये और बोले—" अच्छा!"

लाला सुरजनमल कैथल—जहाँ पूज सोहनलालजी थे—दो

चार दूसरे स्थानकवासियोंके साथ गये । उन्हें सारी बातें सुनाईं अपनी प्रतिज्ञाका हाल भी कहा ।

इच्छा न होते हुए भी पूज सोहनलालजी १४ साधुओं सहित सामाने आये । सारे शहरमें पवनवेगसे यह बात फैल गई कि स्थानकवासियोंका और श्वेतांवरोंका शास्त्रार्थ होनेवाला है ।

लाला सुरजनमलने पूज सोहनलालजीसे कहाः—" महाराज! अब शास्त्रार्थकी तैयारी होनी चाहिए । "

पूज सोहनलालजीने जवाब दिया—" श्रावकजी! शास्त्रार्थ किससे करनेको कहते हो इसके गुरु आत्मारामजी भी जब हमारे प्रश्नोंका जवाब न दे सके तब यह तो देही कैसे सकता है ?"

सु॰ज॰—यह तो और भी अच्छी बात होगी । अगर वे हार जायँगे तो तत्काल ही स्थानकवासी हो जायँगे ।

बात बड़ी मीठी, मनमें गुद्गुदी पैदा करनेवाली थी; मगर थी असाध्य । पूजजी अपनी स्थिति समझते थे । यदि उन्हें रुपयेमेंसे एक आना भी विश्वास होता कि, हम वल्लभविजयजीसे शास्त्रार्थमें जीत जायँगे तो वे इस स्वर्ण अवसरको कभी न छोड़ते । मगर उन्हें तो रत्तीभर भी विश्वास नहीं था । इस सौदेमें उन्हें तो हानि ही हानि दिखती थी । इसलिए बोलेः—" एक प्रश्न जाकर वल्लभविजयजीसे पूछो । वे इसका उत्तर बिलकुल न दे सकेंगे । प्रश्न यह है,—'आत्मारामजीने जैनतत्वादर्शके बारहवें परिच्छेदमें, महानिशीथ सूत्रके तीसरे अध्ययनका पूजाके विषयका जो पाठ दिया है वह सूत्रमें कहाँ लिखा है ?

बताइए ।' वे पाठ न बता सकेंगे; क्योंकि सूत्रमें वह पाठ नहीं है । बस लोगोंसे कह देना कि, इनकी सारी बातें इसी तरह मनगढंत हैं । सच्चा वीतरागका धर्म तो स्थानकवासी ही पालते हैं । लोग तत्काल ही स्थानकवासी धर्मके हिमायती हो जायँगे ।"

सुर्जनमल उछल पड़ा । मानों उसे चिन्तामणि रत्न मिल गया है ; उसका मन आकाशमें महल बनाने लगा । उसने अपने कल्पना चक्षुसे देखा कि, जो वल्लभविजयजी श्वेतांबर सम्प्रदायके स्तंभ थे वे ही अब स्थानकवासी संप्रदायके स्तंभ हो गये हैं । जिनके कारण श्वेतांबरोंका समस्त भारतमें जयजय कार हो रहा था उन्हींके कारण अब स्थानकवासियोंकी जय पताका उड़ रही है । भोले श्रावकको क्या खबर थी कि थोड़ी ही देरमें यह महल—यह सुखस्वप्न नष्ट भ्रष्ट हो जायगा ।

हमारे चरित्रनायक व्याख्यान दे रहे थे । मुसलमान, ब्राह्मण, क्षत्री आदि सभी तरहके लोग उपदेश सुन रहे थे और अपनी शंकाएँ मिटा रहे थे । उसी समय लाला सुर्जन-मल कई स्थानकवासियोंके साथ वहाँ पहुँचे उस समय वे इतना हर्षबावले हो रहे थे कि उन्हें सभ्यताका भी खयाल न रहा । बात कैसे शुरू करनी चाहिए इसका ज्ञान तो हो ही कैसे सकता था ? उन्होंने झटसे मुखधनुषकी टंकार कर पूज सोहनलालजीका दिया हुआ ब्रह्मास्त्र छोड़ा ।

श्रोता चौंके । उन्होंने सुर्जनमलकी तरफ देखा । व्याख्या-नके रसपानमें विघ्न डालनेवालेपर उन्हें तरस आया । हमारे

चरित्रनायककी स्थिति निराली थी। वे सुर्जनमलकी तरफ देखकर मुस्कुराये और बोले:—"भावी श्रावक! एक बड़ी सभा करो। सभी धर्मके बड़े बड़े विद्वानोंको बुलाओ! उसीमें हम वह पाठ दिखायँगे। यहाँ दिखानेसे कोई लाभ नहीं है।"

सभी श्रोताओंने कहा:—"ऐसा ही होना चाहिए। जनता-पब्लिक-को भी मालूम हो जायगा कि, कौनसा फिरका वीतरागका सच्चा उपासक है।"

सुर्जनमल ऐसी आशा करके नहीं आया था। उसका हवाई किला ध्वंस हो गया। उसे दुःख हुआ। "ऐसा ही सही" कह कर वह चला गया।

शास्त्रार्थका दिन निश्चित हुआ। सारे शहरमें धूम मच गई। आसपासके अनेक लोग शास्त्रार्थ सुनने जमा होने लगे।

शास्त्रार्थके एक दिन पहले शहरके मुखिया लाला पंजावराय, लाला सीताराम, आदि कई पंडितों और यति बख्शीऋषिजीके सहित पूज सोहनलालजीके पास गये। अनेक बातें होती रहीं। शास्त्रार्थकी बात छिड़ी। बख्शीऋषिजी बोले:—"महाराज आप शास्त्रार्थमें तो कल जावेंहीगे?"

सोहनलालजीने वही बात दुहराई जो सुर्जनमलसे कही थी।

बख्शी०—"मगर वल्लभविजयजी तो पाठ दिखानेके लिये तैयार हैं।"

सोह०—"नहीं जी! यह पाठ सूत्रमें है ही कहाँ?"

बख्शी०—"यदि नहीं है तब तो आपकी जीत निश्चित ही है। आपको यह अवसर हाथसे न खोना चाहिए।"

सोह०—"हम अपना स्थान छोड़ कर कहीं नहीं जाते।"

बख्शी०—"धर्मकार्यमें जाना बुरा नहीं है और वह तो ऐसी जगह है जहाँ किसी तरहकी रोक नहीं हो सकती। पंडितोंके सामने सत्यासत्यका निर्णय हो जायगा।"

सोह०—"पंडित क्या समझते हैं वे तो टुकड़ गदाई हैं।"

साथमें गये हुए पंडितोंके अंदरसे एक क्रुद्ध होकर बोलाः—"यदि पंडित नहीं समझते हैं तो क्या गधे चरानेवाले कुम्हार समझते हैं? कहाँ मुनि वल्लभविजयजी विद्या और विद्वानोंका सम्मान करनेवाले और कहाँ तुम!"

सभी उठ कर चले गये।

कटरेमें सभा होना निश्चित हुआ था। सभास्थान जनतासे खचा खच भर गया। दिनके ठीक चार बजे हमारे चरित्रनायक सभामें, अपने कई साधुओं सहित पहुँचे। आपने जैन धर्मका महत्त्व समझाकर श्वेताम्बरों और स्थानकवासियोंमें क्या फर्क है सो समझाया। स्थानकवासियोंके दिल दहले। उन्हें अपने पंथकी नौका डगमगाती हुई दिखाई दी। उनमेंसे कई पूज सोहनलालजीके पास पहुँचे और दुःखी स्वरमें बोलेः—"महाराज अगर आज आप शास्त्रार्थमें न चलेंगे तो हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे।"

यद्यपि पूज. सोहनलालजी पहले कह चुके थे कि हम

किसी दूसरी जगह नहीं जाते तथापि उन्होंने अपने श्रावकोंको प्रसन्न रखनेके लिए करमचंदजी नामके साधुको भेजा । उन्हें महानिशीथ सूत्र भी दे दिया ।

करमचंदजी एक दूसरे साधु सहित सभास्थानमें पहुँचे और सभामें व्याख्यान और शास्त्रार्थके लिए बनाई हुई जगह पर न जाकर एक तरफ़ खड़े हो गये और कुछ कहने लगे ।

लोगोंने कहाः—" महाराज आप व्यास पीठ पर आइए । "

उन्होंने उत्तर दियाः—" हम वहाँ नहीं आ सकते । "

लोगोंको व्याख्यानमें आनंद आ रहा था मगर उन्होंने व्याख्यान बंद कर कर्मचंदजीसे वार्तालाप करनेकी हमारे चरित्रनायकसे प्रार्थना की । आप अपना व्याख्यान बंद कर करमचंदजी जहाँ खड़े थे वहाँ गये और सादर पूछाः—" क्या आप शास्त्रार्थ करेंगे ? "

करमचंदजीने उत्तर दियाः—" हम यहाँ शास्त्रार्थ करने नहीं आये हैं । "

लोग हँस पड़े । कुछ उद्धत युवक करमचंदजीको अपमान जनक शब्द कह बैठे । हमारे चरित्रनायकने उनको धमकाया और कहाः—" खबरदार ! त्यागीका अपमान न करना । "

लोग चरित्रनायककी इस महानताको देखकर मुग्ध हो गये । करमचंदजीके दिल पर भी इस महानताका प्रभाव पड़ा । वे बोलेः—" हम तो यतिजीको पाठ दिखाने आये हैं । "

यति वल्लभऋषिजीने जैनतत्त्वादर्शके साथ पाठ मिलानेके

कहा। करमचंदजीने अंगूठे नीचे उस पंक्तिको छुपा दिया जिसमें पूजा करनेकी बात लिखी थी। यतिजीने अंगूठा हटवाकर वह पंक्ति स्पष्ट अक्षरोंमें पढ़कर सुनाई। स्थानकवासी साधु और श्रावकोंको बड़ा बुरा लगा। लोगोंने भगवान महावीरकी जय! आत्मारामजी महाराजकी जय! वल्लभ-विजयजी महाराजकी जय! ध्वनिसे सभामंडपको गुँजा दिया। स्थानकवासी साधु तथा श्रावक चुपचाप अपने पूजजीके पास चले गये। पब्लिकने जुलूसके साथ हमारे चरित्रनायकको उपाश्रयमें पहुँचाया।

दूसरे दिन सूर्यग्रहण था। ग्रहणमें अन्नोदक ग्रहण करना प्रायः हिन्दु तथा जैन सभी बुरा समझते हैं; कोई करता भी नहीं है। मगर पूज सोहनलालजीने उस दिन आहारपानी मँगवाया, किया और पटियाले चले गये इसलिए वे लोगोंकी दृष्टिमें और भी ज्यादा गिर गये।

हमारे चरित्रनायकने दो चार दिन और वहीं ठहर रियास्त नाभाकी तरफ विहार किया; नाभे पहुँचे। पूज सोहनलालजी भी पटियालेसे विहार कर वहीं पहुँच गये थे।

एक दिन हमारे चरित्रनायक जब व्याख्यान समाप्त कर साधारणतया वार्तालाप कर रहे थे तब एक व्यक्तिने निवेदन किया:—"कृपानिधान! पूज सोहनलालजी और उनके शिष्य जगह जगह कहते फिरते हैं कि, श्वेतांबरोंमें कोई ऐसा नहीं है जो हमारे साथ शास्त्रार्थ करे।"

१ विशेष वृत्तान्त और वहाँ की उपस्थित जनता—जिसमें अनेक विद्वान भी थे—का फैसला उत्तरार्द्ध में देखिए।

नाभाके महाराज श्रीहीरासिंहजी बड़े ही धर्मप्रेमी और न्यायी थे। साधु संतों पर उनकी बड़ी भक्ति थी। जब उन्होंने हमारे चरित्रनायकके आगमनकी खबर सुनी तो आपको बुलाया। आप राजसभामें पधारे। नरेशने आपको बड़े आदरके साथ ऊँचे स्थान पर बिठाया। आपसे वार्तालाप कर नरेश बहुत प्रसन्न हुए। उनके अन्तःकरणमें बड़ी ही शान्ति हुई। सच है—

चंदनं शीतलं लोके, चंदनादपि चंद्रमाः।
चंदनचंद्रयोर्मध्ये, शीतलः साधुसंगमः॥

(भावार्थ—संसारमें चंदन शीतल है, चंदनसे चंद्रमा शीतल है, मगर चंदन और चंद्रमाकी अपेक्षा भी साधुओंकी संगति विशेष शीतल है,—आत्माको विशेष रूपसे शान्ति देनेवाली है।)

अनेक मतमतान्तरोंकी चर्चा होती रही। नाभानरेश और उनके दर्बारी आपकी विविध धर्मोंकी जानकारी, तथा भिन्न भिन्न धर्मोंके तत्वोंको, अहिंसाधर्मके प्रतिनिधिके रूपमें होनेकी, प्रतिपादनकरनेकी सुंदर रीतिको देखकर बड़े खुश हुए। सबने धन्य धन्य कहा। करीब एक घंटे तक वार्त्तालाप करके आप अपने उपाश्रय लौट गये।

लाला जीवाराम नाभामें एक बहुत प्रतिष्ठित सज्जन थे। जातिके अग्रवाल और नाभानरेशके बालमित्र थे। राज्यमें वे चाहते थे सो करसकते थे। यद्यपि वे वैष्णवधर्म पालते थे, तथापि हमारे चरित्रनायक पर उनकी अचल भक्ति थी।

सं० १९५६ में जब आप नाभा पधारे थे तभीसे, लालाजीके हृदयमें आपके लिए भक्ति उत्पन्न हो गई थी।

वे रोज व्याख्यानमें आते थे और धर्मवचनामृत पान कर कृतकृत्य होते थे। जिस रोज चर्चाकी वात छिड़ी थी उस दिन भी वे बैठे हुए थे। आपने उनकी तरफ देखा और कहाः—" लालाजी! सुना आपने? नाभाका राज्य बड़ा ही न्यायी समझा जाता है। महाराज हीरासिंहजी सत्य निष्ठ और न्याय करनेमें साक्षात् धर्मराज हैं। आप इस न्यायासनके स्तंभ हैं; मगर आपके राज्यमें भी ऐसी वातें होती हैं। यह आश्चर्य है। एक वार राज्यसभामें शास्त्रार्थ कराकर सदाके लिए क्या इसका फैसला नहीं हो सकता?"

लालाजी कुछ देर सोच कर वोलेः—" आप शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं?"

आपने उत्तर दियाः—" मैं हर समय तैयार हूँ। आप मेरे इन छः प्रश्नोंका उत्तर मँगवा दें।" आपने छः प्रश्न लिखे हुए दिये।

लालाजीने जाकर महाराज हीरासिंहजीसे अर्ज की। प्रश्नपत्र भी दिया। उन्होंने फर्मायाः—"कोई हर्ज नहीं है। तुम स्थानकवासियोंको पूछकर इसका प्रबंध कर दो।"

लाला जीवारामजीने पूज सोहनलालजीके पास आदमी भेजकर उनसे पूछा कि आप शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं या नहीं? श्वेतांवरी शास्त्रार्थके लिए तैयार हैं।"

पूज सोहनलालजी बड़े चक्करमें पड़े। हाँ कह कर हमारे चरित्रनायकके साथ शास्त्रार्थमें ठहरना दुःसाध्य था। ना कहनेसे लोगोंकी और खासकरके वहाँके अपने बड़े बड़े श्रावकोंकी निगाहसे गिर जानेका भय था। बहुत सोचविचारके बाद उन्होंने शास्त्रार्थ करनेकी सम्मति दी। मगर खुद शास्त्रार्थमें शामिल न हुए। उन्होंने अपने पोते शिष्य श्रीयुत उदयचंद्रजीको इस शास्त्रार्थका मुखिया नियत किया और लिख दिया कि इनकी हारसे हमारी हार समझी जायगी और इनकी जीतसे हमारी जीत।

कई दिन तक यह शास्त्रार्थ हुआ। महाराजा हीरासिंहजी स्वयं शास्त्रार्थके समय उपस्थित रहते थे। प्रसंगोपात्त अनेक मनोरंजक बातें भी हुआ करती थी। उनमेंसे हम एकका यहाँ उल्लेख करते हैं।

" एक दिन श्रीयुत उदयचंद्रजीने कहा कि,—" श्वेतांबर लोग मुँहपत्ति नहीं रखते हैं। शास्त्रोंमें मुँहपत्ति रखनेकी आज्ञा है। अतः ये लोग शास्त्राज्ञाके विराधक हैं। "

आप बोले;—" धर्मावतार! आप देखते हैं कि मेरे हाथमें एक छोटासा सोलह अंगुल लंबा और सोलह अंगुल चौड़ा कपड़ा है। इस कपड़ेको मुँहके आगे रक्खे बिना कभी मैं एक शब्द भी नहीं बोलता। (सभामें बैठे हुए सभी लोगोंको संबोधन करके) क्या आपमेसे कोई कह सकता है कि, मैं एक शब्द भी बगैर इस कपड़ेके बोला हूँ। सब बोल उठे,—

"बिलकुल नहीं।" आपने फर्माया:—"इस कपड़ेहीका नाम मुँहपत्ति है। मैं हर समय इसका उपयोग करता हूँ। अब स्वयं आप विचार सकते हैं कि, श्रीयुत उदयचंद्रजीका आक्षेप कितना निरर्थक है।"

महाराजा हीरासिंहजी मुस्कुराये और बोले:—"उदयचंदजी तुम्हारी यह कपड़ा मुँह पर बाँध रखनेकी कला बिलकुल अच्छी नहीं लगती। जीव मरनेकी बात कहते हो सो हवा तो नाकमेंसे भी निकलती है और कानसे भी जाती आती ही है। अगर तुम जीवोंकी रक्षा ही करना चाहते हो तो ईस-तरहका टोपा बनाकर पहना करो।"

सी तरहकी अनेक बातें हुई थीं। नाभेके शास्त्रार्थका फैसला और प्रश्नपत्र उत्तरार्द्धमें 'नाभेका शास्त्रार्थ' के नामसे छपे हैं।

नाभेके शास्त्रार्थके बाद आपने 'मालेरकोटला' की तरफ विहार किया। एक महीने तक वहीं रहे और भव्य जनोंको और जिज्ञासुओंको धर्मामृत पिलाकर कृतकृत्य करते रहे। सामानेके श्रीसंघने आपसे सामानामें चौमासा करनेकी विनती

१ कहा जाता है कि, नाभानरेशने एक टोपा बनवाया। वह इस तरहका थ कि, जिससे आँखोंके सिवा नाक, कान और मुँह सभी ढक जायँ। फिर एक बालकको सभामें बुलवाकर उसे वह टोपा पहनाया और कहा कि, तुम इस तरह पहना करो। इसीसे तुम्हारी धारणाके अनुसार तुम पूर्णरूपसे जीवोंकी रक्षा कर सकोगे।

की ' आप उस विनतीको मान कर कोटलेसे सामाने पधारे और सं० १९६० का सत्रहवाँ चौमासा वहीं किया।

वहाँ एक जिनमंदिर बनवाना भी स्थिर हुआ।

पंजाबमें प्रायःसभी स्थानोंपर पर्युषणोंमें रथ निकलते हैं। भगवानकी प्रतिमाएँ सारे शहरमें जुलूसके साथ फिराई जाती हैं। सामानेमें भी बड़ी धूमसे जुलूस निकलनेकी तैयारियाँ हो रही थी। शान्तमूर्ति मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजने पाली-तानेसे दो छोटी मूर्तियोंके साथ एक श्रीशान्तिनाथ भगवा-नकी दिव्य प्रतिमा भेजी थी। उसका नगरप्रवेश बड़ी धूमधामसे कराया। गया उस दिन भी स्थानकवासियोंने गड़बड़ी मचाई थी; मगर हमारे चरित्रनायकके दिव्य उपदे-शके कारण सनातनी भी आप पर भक्ति रखते थे और हैं इस लिए उन्होंने भी इस कामको आपहीका काम समझकर रथ निकालनेमें पूरी सहायता की। स्थानकवासी देखते ही रह गये।

लाला सीताराम और लाला पंजाबराय सामाना शहरमें अच्छे प्रतिष्ठित और वसीलेवाले आदमी हैं। जातिके अग्रवाल हैं और सनातन धर्म पालते हैं। वे हमारे चरित्रनायक पर इतनी भक्ति रखते हैं कि संभवतः श्रावक भी उनकी बराबरी शायद ही कर सकें। दोनों सज्जन नियमित रूपसे आपके व्याख्यान सुनने आते थे। उन्होंने प्रथमसे ही आपसे निवेदन किया था

कि आप किसी तरहकी चिंता न करें। हम सब प्रबंध ठीक कर देंगे। प्रभुकी सवारी जरूर निकाली जावे।

आपने लाला पन्नालालजी अमृतसर वालोंको, लाला गंगारामजी अंबालावालोंको और लाला गूजरमलजी होशियारपुरवालोंके पोते लाला दौलतरामजीको बुलाया और रथयात्राकी इच्छा जाहिर की।

और विघ्नोंकी बात कही। वे तत्काल ही पटियाला पहुँचे। वहाँ मालूम हुआ कि बारबटन साहब-जो आजकाल राज्यका इंतजाम कर रहे हैं-शिमला हैं। वे तत्काल ही शिमलाके लिए रवाना हो गये और आपको पता दे गये कि, आप चिन्ता न करें। हम शिमला जा रहे हैं शासनदेव हमारी सहायता करेंगे। इस धर्मकार्यको कोई रोक न सकेगा। जहाँ आप हैं वहाँ विघ्न कितनी देर ठहर सकता है?

इन सज्जनोंका पंजाबमें अच्छा मान है। लाला पन्नालालजीको प्रायः कई राजा महाराजा और हाकिम लोग पहचानते हैं। जब ये शिमला पहुँचे और बारबटन साहबसे मिले तब साहबने आश्चर्यके साथ पूछाः—"आप किधरसे आ गये?"

लालाजी बोलेः—"आपसे हमारा धर्मकाम कराना है इस लिए यहाँ आये हैं।"

साहबने पूछाः—"आपका कौनसा धर्म-कार्य है?"

लालाजीने सामानेकी बात सुनाई और कहाः—"सामा-

नेमें हमारे गुरुओंका चौमासा है। वहाँ हम जुलूस निकालना चाहते हैं; मगर वहाँके स्थानकवासी भाई हमारे धर्मकाममें विघ्न डालनेके लिए हर तरहकी कोशिश करते नजर आते हैं, सो इसके लिए उनको हिदायत होनी चाहिए। हमको वे लोग फिसाद करेंगे ऐसा डर है; इस लिये आप वहाँ खास पुलिसका, इन्तजाम करनेके लिए, भेज दीजिए, ताके वे हमारे काममें किसी तरहका खलल न डाल सकें।"

वहुत कुछ सोच विचारके वाद साहवने जुलूस निकालनेका इनामत और पटियाले अपने सुप्रिण्टेण्डेण्टके पास हुक्म भेज दिया कि, वे सशस्त्र पुलिसकी चार गार्द सामाने भेज दें और जहाँ कोई थोड़ीसी भी गड़वड़ करे फौरन उसको कैद कर लें।

इस कारणसे भी जुलूस आनंदपूर्वक निकाला गया। विक्रम संवत् १९६१ भादवा वदी १४ को महेन्द्रध्वज निकला, रथयात्रा हुई और कल्पसूत्रकी सवारी निकली। साथमें, कोटला, पट्टी, होशियारपुर, सामाना, गुजराँवाला और .अंवालाकी जैनभजन-मंडलियाँ थीं। इतना ही क्यों सामानेके सनातनी भाई भी अपनी भजनमंडली और पूरे ठाठ सहित जुलूसके साथमें थे।

सामानेके श्रीआत्मानंद जैनसभाके सभासदोंकी विनतीसे हमारे चरित्रनायकने लच्छीकी चालमें उस समय एक भजन बनाया था, वह यहाँ दिया जाता है।

आहोजी शांति प्रभु सुखकारी।
सुखकारी सुखकारी भवसागर पार उतारी। शांति० (अंचली)
आहोजी शहर समानामें,
समानामें समानामें जिनमंदिर बनाया भारी ॥ शां० ॥ १ ॥
आहोजी सिद्धगिरि तीरथसे।
तीरथसे तीरथसे प्रभु मूरति मोहनगारी ॥ शां० ॥ २ ॥
आहोजी भेजी भावोंसे।
भावोंसे भावोसे हंसविजय मुनि उपकारी ॥ शां० ॥ ३ ॥
आहोजी परव पजोसनमें।
पजोसनमें पजोसनमें होया महोच्छव शोभाकारी ॥ शां० ॥ ४ ॥
आहोजी उन्नीसौ इकसठमें।
इकसठमें इकसठमें वदि भादों चौदस गुरुवारी ॥ शां० ॥ ५ ॥
आहोजी मूरति सुखदाई।
सुखदाई सुखदाई फिरी इंदर धजा इकसारी ॥ शां० ॥ ६ ॥
आहोजी मुद्रा मनहारी।
मनहारी मनहारी नित्य सेवा करें नरनारी ॥ शां० ॥ ७ ॥
आहोजी प्रभु जयकारी।
जयकारी जयकारी जाऊँ बार बार बलिहारी ॥ शां० ॥ ८ ॥
आहोजी पूजा गुणकारी।
गुणकारी गुणकारी दुख दोहग दूर निवारी ॥ शां० ॥ ९ ॥

आहोजी संपदा सुख पावे।
सुख पावे सुख पावे जो गावे प्रभुगुण वारी॥ शां०॥ १०॥
आहोजी वल्लभ गुण गावे।
गुणगावे गुणगावे चित आतम—आनंद धारी॥ शां०॥ ११॥

सं० १९६१ का अठारहवाँ चौमासा सामानेमें समाप्त कर आप नाभा, मालेरकोटला होते हुए रायकोट पधारे। रायकोटमें एक भी श्वेताम्बर श्रावक नहीं था। सभी स्थानकवासी थे। इस लिए आहार पानीके लिए आपको बड़ी तकलीफ होती थी। तो भी आप एक मास तक इस हेतुसे रहे कि यहाँ किसी न किसी तरह धर्म का बीज बोया जाय और कुछ श्रावक हो जायँ। आपके कष्ट सहन और धर्मोपदेशका शुभ फल भी मिला।

वहाँसे विहार कर लुधियाने होते हुए और लोगोंको धर्मामृत पिलाते हुए आप सं० १९६२ का उन्नीसवाँ चौमासा करनेके लिए जीरे पधारे।

वहाँ पंन्यास सुंदरविजयजी, पं० ललितविजयजी और पं० सोहनविजयजी गुजरातसे विहार करते हुए आपके पास

१—ये ओसवाल थे। इनका नाम वसंतराय था। जम्मू घर था। इन्होंने गेंडेरायजी स्थानकवासी साधुके पाससे स. १९६० में सामानामे दीक्षा ली। मगर पीछेसे इनकी स्थानकवासियोंके धर्मसे श्रद्धा उठ गई और हमारे चरित्रनायकके पास दीक्षा लेनेके लिए अम्बाले गये। आपने फर्मायाः—"अभी ठहरो।" कुछ दिनके बाद अज्ञातकारणसे वे वापिस पूज सोहनलालजीके पास दिल्लीमे चले गये। सामानेके शास्त्रार्थके समय ये पूजजीके साथ थे। उस समय फिरसे इनकी इच्छा संवेगी

आये थे। वहीं ईडर (महीकाँठा) के एक गृहस्थ कोदर कालीदास आपके पास दीक्षा लेनेकी अभिलाषासे आये थे। जीराके नायब तेहसीलदार सरदार शेरसिंहजी अक्सर आपके पास तत्वचर्चा और धर्मश्रवण करनेके लिए आया करते थे। इस चौमासेमें आपने पंजाबके श्रावकोंकी विज्ञप्तिको ध्यानमें लेकर निनानवे प्रकारी पूजा बनाई।

वहाँ पर स्कूलमें एक फारसीके अध्यापक थे। वे बड़े ही विद्वान, सज्जन और गुणग्राही थे। लोग उन्हें खलीफाजी कहा करते थे। नाम उनका माघीरामजी था। उन्होंने हमारे चरित्रनायककी प्रशंसामें एक ग़ज़ल लिखी थी। वह यहाँ दी जाती है।

बननेकी हुई। मगर वहाँ अपनी इच्छाको पूरी करनेका मौका न देख चुप रहे। वहाँसे सोहनलालजीके साथ पटियाला गये। अवसर देख वहाँसे ये हमारे चरित्रनायकके पास पहुँचे और चरण पकड़ कर बोले कि, मेरा निस्तार कीजिए। आपने कहा,—"तुम थोड़े दिन गुजरातमे तीर्थयात्रा कर आओ। ये तीर्थयात्रार्थ गुजरातमे आये। पाटणमे १०८ प्रवर्तकजी श्रीकान्तिविजयजी महाराजके दर्शन कर भोयणीमे पं० श्रीललितविजयजी महाराजके पास आये। वहाँसे मुनि श्रीहंसविजयजी महाराजके साथ सिद्धाचलजीकी यात्रा की! मांडलतक उनके साथहीमें रहे। फिर तपस्वीजी श्रीशुभ विजयजीसे सं० १९६३ में दसाडा (गुजरात) गाँवमें संवेग दीक्षा ली। नाम सोहनविजयजी रक्खा। हमारे चरित्रनायकके शिष्य कहलाए। अब आप उपाध्यायजी हो गये हैं।

ग़ज़ल।

वो बे[1]दल गुरु हैं हमारे जहानमें;
औसा[2]फ़ जिनके आ नही सकते बयानमें॥ १ ॥
लाए जो मुश्कि[3]लात कोई अपनी उनके पास;
पर्दा भरमका दूर करें एक आनमें ॥ २ ॥
लाता है ख़ा[4]मा उज़्र बुँ[5]रीदा–ज़बानीका;
जब वस्[6]फ़ आ न सकते है वहमो गुमानमें ॥ ३ ॥
बनते है काम बिगड़े ख़[7]लायकके रात दिन;
फ़ै[8]ज़ आपका है जारी ज़मीनो[9] ज़मानमें॥ ४ ॥
हा[10]दी ओ रहनु[11]मा ओ गुरु मेरे आप हैं;
काफ़ी है फ़ख़्र मुझको यही ख़ादमानमें ॥ ५ ॥
बूटा जो विजयानंद सूरीजी लगा गये;
सरसब्[12]ज़ आपसे रहा वो गुलिस्[13]तानमें ॥ ६ ॥
झड़ते हैं फूल मुँहसे जो करते बखान है;
हैं मख़ज़ने[14]–उलूम अमीं रस ज़बानमें ॥ ७ ॥
या रब ! है माधीरामकी हरदम यही दुआ;
वल्लभविजय गुरुजी रहें खुश जहानमें ॥ ८ ॥

---

१ अद्वितीय २–गुण ३–कठिनाइयाँ ४–कलम ५–नोक टूटनेका ६–गुण. (तीसरे पदका भाव यह है—' जब आपके गुण कल्पनामे भी नही आ सकते है तब कलम कहती है मेरी नोक टूट गई है । इसके द्वारा कविने यह बताया है कि आपके गुण इतने हैं कि वे लिखे नहीं जा सकते।) ७–दुनियाके लोग ८–बख्शिश; कृपा ९–हर समय तमाम पृथ्वी पर १०–उपदेशक ११–मार्ग बतानेवाले १२–हरा भरा १३–बाग १४–विद्याके भंडार.

चौमासा समाप्त होने पर जीरासे विहार कर मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी आदि मुनिमंडल सहित आप पुनः रायकोट पधारे। बड़ी धूम धामसे आपका स्वागत हुआ। जैनोंके साथ ही अनेक सनातनी और मुसलमान भी शामिल हुए थे। पंन्यास श्रीसुंदरविजयजी और सोहनविजयजी जीरासे सीधे पट्टी गये। वहीं कोदर कालीदासको उन्होंने सं० १९६२ के मार्गशीर्ष वदी ५ के दिन आपके नामकी दीक्षा दी। नाम उमेदविजयजी रक्खा। हमारे चरित्रनायकने एक मास तक रायकोटहीमें निवास किया। 'लोगस्स' सूत्रपाठके ऊपर ही आप महीनेभर तक विवेचन करते रहे। श्रीयुत दसौंदीरामजीने उस समय एक भजन लिखा था उसे हम यहाँ आत्मानंद जैन पत्रिकासे उद्धृत करते हैं।

भजन।

चाल—क्यों डूबे मँजधार क्षमा है तेरे तरनको।

धन भाग तेरे अय रायकोट! मुनि वल्लभविजय आये॥ अंचली॥
सुन करके सतगुरुका आना, हर्ष सभीने मनमें माना।
भैनी तक बहु पुरुष गुरुके लेनेको धाए॥ १॥ धन भाग०॥
'हीरविजय' गुरु 'वल्लभ' आये, संग 'कपूरविजय' को लाये।
देवीचंदने खोल चौबारा आसन लगवाए॥ २॥ धन०॥
धन चंबामल भाग तुम्हारा, नित होते सतगुरु दीदारा।
खुले मकॉके भाग चरण जो गुरुओंने लाये॥ ३॥ धन०॥

फूली नहीं समाती नगरी, दर्शनको मिल आई सगरी।
मनमोहन छवि देख सभोंके मन आनंद छाये ॥ ४ ॥ धन० ॥
सब भाइयोंने अरज गुजारी, सफल करो गुरु आश हमारी।
दो व्याख्यान सुनाय सभी जन सुननेको आये ॥ ५ ॥ धन० ॥
सतगुरुने व्याख्यान सुनाया, अर्थ सहित सबको समझाया।
ज्ञान झड़ी दई लाय भाग धन उनके जो न्हाये ॥ ६ ॥ धन० ॥
रौनक दिन दिन होती भारी, सुनने आती नगरी सारी।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य श्रावक सबने चित लाये ॥ ७ ॥ धन० ॥
लाला गूजरमल नित आवे, सच्चे दिलसे प्रेम लगावे।
पंडित धरनीधरका कोई दिन खाली नहीं जाये ॥ ८ ॥ धन० ॥
माधोरामको प्रेम है भारी, शादीराम गुरु आज्ञाकारी।
घु मल चौधरी सुन सुन बलिहारी जाये ॥ ९ ॥ धन० ॥
गंगाराम गुरु मनमें भाये, बारूमल्ल गुरु देख सुहाए।
आशानंद नंदलाल पंडित जीवामल हर्षाये ॥ १० ॥ धन० ॥
अर्जुनदास आनंद हो सुनके, ऋषिराम प्यासे दर्शनके।
मनीराम मुकुंदीलाल नित सत गुरु गुण गाये ॥ ११ ॥ धन० ॥
मल्लूमल्ल गुरुनाम सिमरते, सादिराम चरणों सिर धरते।
डालीराम और रंगीराम गुरु चरणन चितलाए ॥ १२ ॥ धन० ॥
गुद्दामल गुरुका मतवाला, जगतामलको प्रेम है आला।
हो आनंद कपूरचंद जब गुरुदर्शन पाये ॥ १३ ॥ धन० ॥
प्रेममें नगरी हुई मतवारी, सतगुरुपे जाती बलिहारी।
किस किसका करूँ बयान सभी नर मनमें हर्षाये ॥ १३ ॥ धन० ॥

सिफत गुरुकी कथाकी जितनी, बयान करूँ बुद्धि कहाँ इतनी ।
मै मूरख नादान कहाँ मुझसे वरणी जाये ॥ १४ ॥ धन० ॥
धन सतगुरु धन तेरी माया, मूर्खोंको रस्ता बतलाया ।
दास 'दसौंदी' तरेंगे वे नर, सतगुरु जिनध्याये ॥ १५ ॥ धन० ॥

रायकोटसे आप सुनामके लिए रवाना हुए थे; मगर मार्गमें मुनि श्रीसोहनविजयजीके बीमार हो जानेसे, कोटले चले गये और फिर वहाँसे लुधियाने पधारे ।

वहाँ जानेपर समाचार मिले कि, रामनगरमें श्री-चारित्रविजयजी महाराज बीमार हैं। आपने तत्काल ही उनकी सेवाके लिए सोहनविजयजी और कस्तूरविजयजीको भेज दिया । श्रीचारित्रविजयजीके आरोग्य होजानेपर ये दोनों फिर वापिस लुधिआनामें आ मिले ।

सं. १९६२ का बीसवाँ चौमासा आपने लुधियानेहीमें किया था। यहाँ आपके साथ (१) मुनि महाराज श्रीहीरविजयजी, (२) मुनि श्रीउद्योतविजयजी महाराज (३) श्रीस्वामी सुमतिवि-जयजी महाराज (४) श्रीसोहनविजयजी महाराज (५) श्रीकपूर-विजयी महाराज (६) श्रीकस्तूरविजयजी महाराज और (७) श्रीउमेदविजयजी महाराज थे ।

आप अन्यत्र चौमासा करनेके लिए, सं. १९६३ चैत्र सुदी ११ बृहस्पतिवारको, लुधियानेसे विहार करने-वाले थे; मगर क्षेत्रस्पर्शना चौमासेमें लुधियानेकी थी; वहाँके प्रेमी श्रोताओंके पुण्यका जोर था इसलिए आप वहाँसे विहार न कर

सके और चौमासा वहीं करना पड़ा। कारण यह हुआ कि—

चैत्र सुदी १० बुधवारके दिन करीब साढ़े पाँच बजे शामको रतनचंदजी और चुन्नीलालजी नामके दो ढूँढिये साधु, जहाँ हमारे चरित्रनायक ठहरे हुए थे वहाँ गये और सड़क पर खड़े हो गये। वहींसे उन्होंने हमारे चरित्रनायकको पुकारा। जब आपने झरोखेमें आकर नीचेकी तरफ देखा तो वे बोले:—
" हम शास्त्रार्थ करनेके लिए आये हैं। तुम यहाँसे विहार मत करना। अगर करोगे तो हारे हुए समझे जाओगे। "

आप—शास्त्रार्थ तुम करोगे या कोई और ?

वे—स्वामीजी महाराज श्रीउदयचंद्रजी करेंगे।

आप—उनके साथ तो पहले शास्त्रार्थ हो गया है। उसका फैसला भी प्रकाशित हो चुका है। अब बार बार पीसेको क्या पीसना है ? हारे हुओंके साथ शास्त्रार्थ करना ठीक नहीं है; तो भी यदि उदयचंदजीकी तीव्र उत्कंठा है तो जाकर अपने श्रावकोंसे शास्त्रार्थका बंदोबस्त करा लो हम तैयार हैं।

वे—हम क्या श्रावकोंके बँधे हुए हैं ?

आप—यदि आप श्रावकोंके बंधे हुए नहीं हैं तो ऊपर आ जाइए और चर्चा कर लीजिए।

वे—हम चोर नहीं हैं, हम तो खुले मैदानमें चर्चा करेंगे।

आप—बड़ी अच्छी बात है। आप पंडितोंको मध्यस्थ नियत कर सभा कीजिए। हमको सूचना मिलते ही हम आ जायँगे।

दोनों चले गये। श्रावकोंको यह बात मालूम हुई। उन्होंने आपको, साग्रह विनती करके, लुधियानेहीमें ठहरा लिया और स्थानकवासी श्रावकोंको सूचना दी कि तुम सभा बुलाओ और शास्त्रार्थकी तैयारी करो। हमने तुम्हारे गुरुओंके कहनेसे अपने गुरुओंको यहीं ठहरा लिया है। मगर फिर स्थानकवासियोंने इस विषयकी कोई चर्चा न की। यह एक चालाकी थी। यदि हमारे चरित्रनायक लुधियानेसे विहार कर जाते तो उन्हें यह कहनेका अवसर मिलता कि, हम शास्त्रार्थ करनेको तैयार थे मगर वल्लभविजयजी चले गये। अस्तु।

होशियारपुरके रईस लाला दौलतरामजी होशियारपुरसे आपके दर्शनार्थ, संघ निकालकर, आये थे। प्रायः पंजावके लोग इस संघमें शरीक हुए थे। यहाँ आपने व्याख्यानमें विशेषावश्यक सूत्रमेंसे गणधरवाद वाँचा था। सैकड़ों अन्य धर्मावलम्वी भी व्याख्यानमें आते थे और आपकी मधुर एवं पाण्डित्यपूर्ण वाणी सुनकर प्रसन्न होते थे।

अभी चौमासा समाप्त नहीं हुआ था कि, आपको ज्वर हो आया; इस हालतमें भी आपने कभी व्याख्यान बंद नहीं किया। आपकी सहनशीलता विलक्षण है।

चौमासा समाप्त होते ही आपने, रुग्ण होते हुए भी, विहार किया, नकोदर पधारे। मुनि श्रीललितविजयजी गुरु महाराजकी बीमारीके समाचार सुनकर व्याकुल हो उठे थे। चौमासा

समाप्त होते ही दो साधुओंके साथ वे बीकानेरसे लंबी लंबी सफरें तै करके गुरु महाराजके चरणोंमें आ हाजिर हुए। धन्य गुरुभक्ति !

जीरेमें हरदयाल नामक एक व्यक्ति थे। वे प्रसिद्ध हकीम थे। कहा जाता है कि उनके पास आये हुए मरीजोंमेंसे नव्वे फी सदी आराम होकर ही जाते थे। खुद हकीमजी और अनेक जीरेके श्रावक आपकी खिदमतमें नकोदर पहुँचे। दो चार रोज हकीमजीने वहीं इलाज किया और आपकी तबीअत कुछ सुधरने लगी तब आपसे जीरा पधारनेका आग्रह किया गया। द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका विचार कर आप कुछ साधुओं सहित जीरे पधारे।

जीरेमें हकीमजी आपके शरीरके रोगका इलाज करने लगे और आप अनादि कालसे लगे हुए कर्मरोगका इलाज करनेमें तल्लीन हुए। श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी छत्रछायामें रहकर सं० १९६३ के माघ महीनेमें आपने श्रीपार्श्वनाथ प्रभुकी हिन्दी भाषामें पंच कल्याणककी पूजा बनाई।

जब आपमें चल फिर सकनेकी अच्छी शक्ति आ गई तब आप पट्टी, झंडियाला, अमृतसर आदि होते हुए गुजरांवाला पधारे। वहाँ पर स्वर्गीय आचार्य महाराज न्यायांभोनिधि श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी (आत्मारामजी) महाराजकी समाधि बनवाई गई थी और उसमें आचार्य महाराजके चरण कमलकी प्रतिष्ठा कराना था। मगर भावी बड़ा

प्रबल है । उस समय समाधिमें प्रतिष्ठा होनेका योग न था, इसी लिए वहाँ प्लेगका प्रचंड रूपसे दौरा शुरू हो गया । शहरमें भगदड़ मच गई । श्रावकोंने बड़े उत्साहसे प्रतिष्ठाकी तैयारी शुरू की थी, उनका उत्साह टूटने लगा । आपने अवसर देखकर श्रावकोंको अभी प्रतिष्ठा न करने के लिए समझाया । श्रावकोंको बडा दुःख हुआ; मगर कोई उपाय नहीं था । लाचार उन्होंने आज्ञा मानी । आप भी वहाँसे पपनाखा होते हुए रामनगर पधारे ।

वहाँ आपने श्रीचिन्तामणि पार्श्वनाथकी यात्रा की । वहाँ लाला जगन्नाथ भोलेशाह नाम के एक भक्त श्रावक हैं । उनके पास एक सब्ज पन्नाकी श्रीस्तंभन पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा है । वह बड़ी ही भव्य और वर्तमानकालके लिए तो सवथा अलभ्य है । उसकी वंदना कर आपने अपना कल्याण किया ।

रामनगरसे विहार हुआ । रस्तेमेंसे मुनि श्रीचारित्रविजयजी, मुनि श्रीरविविजयजी और मुनि श्रीललितविजयजी तो गुजरांवाले गये और आप किलेदीदारसिंह पधारे । वहाँसे श्रीसंघ खानगाह डोंगराकी विनती होनेसे खानगाह पधारे । कुछ दिन वहाँ ठहरकर लाहोर पधारे । लाहोर आने पर समाचार मिले कि गुजरॉवालामें अब भी प्लेग है । इधर चौमासा भी पास आ गया था इस लिए आप अमृतसरके लिए रवाना हुए । क्योंकि श्रीसंघ अमृतसरकी चौमासेके लिए पहले ही विनती हो चुकी थी ।

लाहोरसे आप अमृतसर पधारे । शहरमें बड़ी धूमके साथ आपका जुलूस निकला । सं० १९६४ का इक्कीसवाँ चौमासा आपने अमृतसरमें किया । आनंदके साथ धर्मध्यानमें समय बीतने लगा । छठ, अट्ठम, बेले, तेले, एकासन, आंबिल आदिक बहुतसी तपस्याएँ हुई । श्रावकोंके हृदय धर्मभावनाओंके आनन्दमें निमग्न हो रहे थे । साधुओंके हृदयोंमें भी श्रावकोंका आनंदोल्लास देख कर प्रसन्नता थी ।

इसी चौमासेमें आपके गृहस्थावस्थाके बड़े भ्राता खीमचंद भाई बड़ौदेके श्रीसंघका विनतीपत्र और आचार्य १००८ श्रीविजयकमलसूरिजी महाराजका एवं उपाध्याय श्रीवीरविजयजी महाराजका गुजरातकी तरफ विहार करनेका आदेश पत्र लेकर आये । खीमचंदभाईके पहुँचनेसे साधुमंडलमें प्रसन्नता छा गई । आपके हृदयमें भी आनंदकी लहरी उठे बिना न रही । मगर श्रावक मंडलमें उदासी छा गई । उसने विनती की—

" महाराज ! आप हमें यहाँ किसके आधार छोड़कर पधारते हैं ? हमें तो गुरु महाराज आपहीके भरोसे छोड़कर गये हैं । हम आपको कहीं न जाने देंगे । "

आपने फर्माया—" आप लोग जानते हैं कि मैं उन्नीस वरससे पंजावमें हूँ । दीक्षा ले कर मैं गुरु महाराजकी चरणसेवामें रहा और उनका देहान्त होने पर भी मैं यहीं विचरण कर रहा हूँ । कई दिनोंसे मैं एक बार सिद्धाचलजी जाकर

दादाकी यात्रा कर आना चाहता था; मगर आप लोगोंके आग्रहही-से इधर ठहरा हुआ हूँ। साधुमंडली यात्रा रनेके लिए उत्सुक है। मुझे उनका भी खयाल करना चाहिए। और अब तो इधर आचार्य महाराज और उपाध्यायजी महाराजका विहार होने वाला है, इस लिए अब आप लोगोंको मैं उनके आश्रयमें छोड़ कर जाता हूँ। तो भी मैं यह वचन देता हूँ कि, एक वार फिर पंजाब लौटकर आये बिना न रहूँगा। गुरु महाराजके लगाये हुए इस बगीचेको एक वार फिरसे आकर देखूँगा।"

चौमासा समाप्त होने पर आप गुजरातमें जानेके लिए संवत् १९६४ के मगसर वदी १ बुधवारको अमृतसरसे विहारकर आप तरनतारन पधारे। संध्याके समय जब आप देवसी प्रतिक्रमण समाप्त करके बैठे ही थे कि घासीरामजी और जुगलकिशोरजी नामके स्थानकवासी साधु आपके चर-णोंमें आ गिरे और हाथ जोड़कर विनती करने लगे कि,— "गुरु देव! हमारा उद्धार कीजिए। हमारा जन्म निरर्थक जा रहा है। हमने आत्मकल्याणके लिए घर वार छोड़े हैं; मगर जिस स्थितिमें हम हैं उसमें रह कर, हमारा कल्याण नहीं होगा। हमने सूत्र सिद्धान्तोंका जितना ज्ञान प्राप्त किया है उतनेसे हमें यह विश्वास हो गया है कि, स्थानकवासियोंकी क्रिया शास्त्रानुकूल नहीं है; जैनशास्त्रोंके प्रतिकूल है। इस लिए आप अपने चरणोंमें स्थान देकर हमें सन्मार्ग पर चलाइए।"

आपने फ़र्माया:—" यह सत्य है कि, मनुष्य जन्म वार-

वार नहीं मिलता; इस लिए इसके हरेक क्षणका सदुपयोग करना चाहिए। किसी भी धर्ममें दीक्षित होनेके पहले मनुष्यको चाहिए कि, वह उसकी भली प्रकारसे परीक्षा कर ले। तुम अभी हमारे साथ रहो, जैनशास्त्रोंका अनुशीलन करो और क्रियानुष्ठान सीखो। जब तुम्हें पूरा विश्वास हो जाय,—जब तुम्हारा मन सच्चे धर्म पर हिमालयकी तरह अटल हो जाय और जब हम तुम्हें दीक्षा देनेके पात्र समझेंगे तभी दीक्षा दे देंगे।

उन दोनोंने कहा—" कृपानाथ! हमारा मन हिमालयके समान स्थिर हो गया इसी लिए तो नाभासे दौड़े हुए आपके चरणोंमें आये हैं। अगर ऐसा न होता यदि स्थानकवासी साधु रह कर ही हम सत्य धर्मकी क्रिया कर सकते तो एक दीक्षाको छोड़कर दूसरीको ग्रहण करने न आते। महाराज! कृपा कीजिए और हमें इस बंधनसे मुक्त कीजिए। "

लाला पन्नालालजी जौहरी, लाला महाराजमल, लाला नाथूमल आदि श्रावक आपके दर्शन करने तरनतारन आये हुए थे। वे भी उस समय मौजूद थे। उन्होंने विनती की,— " गुरुदयाल! प्यासेको पानी पिलाना, भूखेको अन्न देना, दुखीका दुःख मिटाना तो धर्म है ही मगर आत्माको मुक्तिके मार्गमें लगाना सबसे बड़ा धर्म है। यह बात आपसे निवेदन करना छोटे मुँह बड़ी बात करना है; मगर इन साधुओंकी व्याकुलता देख-हमसे चुप न रहा गया इसी लिए अर्ज कर दी है। हमें क्षमा

करें और इनको अमृतसरहीमें दीक्षा दें । अमृतसरको भी गुजरात जानेके पहले, इतना विशेष लाभ देते जायँ ।"

आप मुस्कुराये और बोलेः—"अच्छा लालाजी! तुम्हारी ही मनो कामना पूरी हो।"

यह वाक्य मानों गंभीर घनगर्जन था। इससे दोनों साधुओं और तीनों श्रावकोंके मन-मयूर आनंदसे नाच उठे।

आप फिरसे अमृतसर पधारे। जब आप अपने साधुओं, श्रावकों और दोनों स्थानकवासी साधुओंके सहित दर्वाजेके पास पहुँचे तब पाँच सात स्थानकवासी श्रावक आकर दोनों साधुओंसे झगड़ा करने लगे। लाला पन्नालालजीको ये समाचार मिले। वे तत्काल ही पुलिस लेकर पहुँचे । पुलिसको आई देख स्थानकवासी श्रावक झगड़ा छोड़ चुपचाप चले गये। आप निर्विघ्नतया मंदिरजीके दर्शन कर लाला महाराजमलजीके मकानमें जा बिराजे।

स्थानकवासियोंने हो हल्ला मचाया और नालिश की कि,—घासीराम नाबालिग जुगलकिशोरको बहका कर ले आया है और यहाँ उसे संवेगी साधु अपना चेला बनाना चाहते हैं। उन्हें इन्होंने लाला महाराजमलके मकानमें बंद कर रक्खा है, बाहर नहीं निकलने देते। यह मकान कटरारामगढियोंमें है । जुगलकिशोरकी माता जैन साध्वी (स्थानकवासी) है और अपने लड़केके वियोगमें व्याकुल हो रही है । अतः लड़का वापिस दिलाया जावे। लड़केको कहीं और जगह न भगा ले जायँ इस लिए उनके लिए वारंट निकाला जाय।

मजिस्ट्रेटने जुगलकिशोरके नामका वारंट दे दिया। कुछ स्थानकवासी साधु पुलिसको साथ ले आप ठहरे हुए थे वहाँ आये। उस समय वहाँ कोई श्रावक नहीं था। केवल श्रीयुत हीरालाल शर्मा वहाँ थे। उन्होंने मकानका दर्वाजा बंद कर-लिया। पुलिसने दर्वाजा खोलनेके लिए कहा। शर्माजीने कहाः-" लाला पन्नालालजीको और लाला महाराजमलजीको आप बुलावें। वे आयँगे तभी मैं दर्वाजा खोलूँगा।" पुलिसने उन्हें बुलाया और अपने आनेका सबब बता जुगल किशोरको अपने सिपुर्द कर देनेके लिए कहा। उन्होंने दर्वाजा खुलवाकर जुगलकिशोरको उनके सिपुर्द कर दिया।

स्थानकवासी भाई जब जुगलकिशोरको गाड़ीमें बिठाकर ले जाना चाहते थे तब लाला पन्नालालजीने कहाः-" ऐसा करना उचित नहीं है। उन्हें पैदल ही लेकर जाओ। इसमें जैन नामकी बदनामी है और खास तरहसे स्थानकवासियोंकी बदनामी है।"

उन्होंने उत्तर दियाः-" हम इसे स्थानकवासी साधु नहीं समझते; यह तो तुम्हारा साधु है। हमारी कोई बदनामी इसमें नहीं है।"

ला० पन्ना०-" भावोंसे ये हमारे साधु होते हुए भी बाना अबतक स्थानकवासियोंहीका पहन रहे हैं। इस लिए लोग आपहीको बुरा बतायँगे।"

उन्होंने उत्तर दियाः—" नहीं जी हम कोई उपदेश नहीं सुनना चाहते । "

लालाजी—" जैसी तुम्हारी इच्छा " कहकर आपके पास चले गये । स्थानकवासी जुगलकिशोरको पुलिसकी गाड़ीमें बिठाकर कोर्टमें ले गये ।

कोर्टने तहकीकातके बाद इस सबूत पर दावा खारिज कर-दिया कि, जुगलकिशोर नाबालिग नहीं है । इस लिए अपनी मर्जीके माफिक काम करनेका उसे हक़ है ।

बादमें बड़ी धूमधामके साथ उन्हें सं. १९६४ मगसिर सुदी ११ रविवार, ता. १९-१-१९०८ ईस्वीके दिन दीक्षा दी गई घासीरामजीका नाम विज्ञानविजयजी रक्खा गया और आपके वे शिष्य हुए । जुगलरामका नाम विबुधविजयजी कायम हुआ और विमलविजयजीके वे शिष्य हुए ।

दीक्षामहोत्सवके समय ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, आदि सभी मौजूद थे । दीक्षाके आनंदोत्सवमें पं. हीरालालजी शर्माकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर उन्हें एक सोनेके कड़ोंकी जोड़ी इनाममें दी गई थी । इस विषयका सविस्तर वृत्तान्त उत्तरार्द्धमें ' घासीराम जुगलराम प्रकरण ' के हैडिंगसे दिया है ।

उसी दिन आपने ' दीक्षा और शिक्षा ' इस विषय पर एक बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान दिया था ।

× × × ×

अमृतसरसे विहार करके आप जंडियाला, जालंधर, लुधियाना

होते हुए अंबाले पहुँचे। आप जिस दिन अंबाले पहुँचे थे उसी दिन दिल्लीकी ओरसे विहार करके आचार्य महाराज १००८ श्रीविजयकमलसूरिजी और उपाध्यायजी महाराज श्री १०८ श्रीवीरविजयजी भी अपने साधुमंडल सहित अंबाले आये थे। दोनोंकी शहरके बाहर भेट हो गई। बड़े जुलूसके साथ दोनोंका नगरप्रवेश कराया गया। आप चार पाँच रोज वहाँ रहकर वहाँसे दिल्लीकी ओर विहार कर गये। खीमचंदभाईने अब पीछा छोड़ा

आप अंबालेसे विहार करके दिल्ली पधारे। उस समय आपके साथ श्रीविमलविजयजी, श्रीकस्तूरविजयजी, श्रीसोहन विजयजी, श्रीविज्ञानविजयजी और श्रीविबुधविजयजी थे। आपने चाहा था कि, इस साल गुजरातहीमें चौमासा करेंगे और हो सका तो इसी साल नहीं तो अगले साल दादाकी यात्रा जरूर करेंगे।

दिल्लीके संघने निश्चय किया कि, चाहे कुछ भी हो जाय हम आपको इस साल दिल्लीमें ही रक्खेंगे। चिन्तामणि रत्नको पाकर कौन छोड़ना चाहता है?

दोनों ओर संघर्ष था। एक ओर गुरुभक्ति थी, दूसरी तरफ गुजरातके श्रावकोंकी—जिसमें भी खास करके खीमचंद-भाई और वड़ोदाके श्रीसंघकी—विनती, साधुओंका शीघ्र ही गुजरातमें जाकर तीर्थयात्रा करनेका आग्रह और आपका-खुदका—जितनी हो सके उतनी जल्दी करके—दादाकी यात्रा करनेका विचार।

भक्तोंके आग्रहसे आपका विचार ढीला पड़ने लगा था; साधुओंके दिलोंमें भी श्रावकोंकी भक्तिगद्गदकंठसे की गई प्रार्थनाने घर किया था; उनके आग्रह शिथिल होने लग रहे थे। भक्त दो कठिनाइयोंको लग भग पार कर चुके थे। अब केवल तीसरी कठिनाई ही रह गई थी। वह थी गुजरातकी विनती। विनती ही क्यों गुजरातके आपको लेनेके लिए आये हुए प्रतिनिधि और आपके सगे बंधु, खीमचंद भाई। क्योंकि दिल्लीसे विहारमें देरी हुई थी और खीमचंद भाईको दिल्लीके श्रीसंघने लिख दिया था कि महाराज साहिबका चौमासा दील्लीहीमें होगा इस लिए वे घर जाकर फिर दील्ली आ गये थे।

श्रावकोंने खीमचंद भाईसे कहा। खीमचंद भाईने पहले तो हाँ, ना की; मगर अन्तमें उनका दिल भी पसीज गया। उन्होंने श्रीसंघके साथ आकर अर्ज की,—"मैं अपना आग्रह छोड़ता हूँ। वड़ौदेके श्रीसंघको इस वर्ष और शान्ति रखनेके लिए कहूँगा। आप संघको नाराज़ न करें; विनती स्वीकार कर लें।" आपने विनती स्वीकारी। जयनादसे उपाश्रय गूँज उठा।

× × × ×

जब आपका चौमासा दिल्लीहीमें होना स्थिर हो गया तब एक दिन दिल्लीके श्रावकोंने प्रार्थना की,—"गुरुदयाल! यहाँसे थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुरजी तीर्थ स्थान है। उसमें, आप जानते ही हैं कि, श्रीशान्तिनाथ स्वामी, श्रीकुंथुनाथ स्वामी

और श्रीअरनाथ स्वामीका—तीन तीर्थंकरोंके—च्यवन, गर्भ, दीक्षा और केवल ऐसे—चार कल्याणक, प्रत्येकके, कुल मिलाकर बारह कल्याणक हुए हैं। प्रथम तीर्थंकर श्रीआदीश्वर भगवानको भी, वर्षीतपका पारणा, श्रेयांसकुमारने वहीं करवाया था। उस दिन वैशाख सुदी ३ का दिन था; उस दिनके दानसे श्रेयांस कुमारको अक्षय फलकी प्राप्ति हुई थी। इसी लिए उस तिथिका नाम अक्षय तृतीया या आखा तीज हो गया। अतः यदि आपकी आज्ञा और इच्छा हो तो आप यात्राके लिए पधारें, संघकी भी आपके साथ यात्रा हो जायगी।"

आपने फर्मायाः—"इसके सिवा दूसरी कौनसी बात प्रसन्नताकी होगी ? फाल्गुन चौमासा निकट है वह वहीं किया जायगा।"

श्रावक बोलेः—"हम भी अनेक पापके कामोंसे बच जायँगे। क्योंकि होलियोंके दिन तीर्थ स्थानपर बीतेंगे।"

तैयारी हो गई। हमारे चरित्रनायकने अपनी साधुमंडली सहित एक दिन पहले ही विहार किया। दूसरे दिन संघ भी रवाना हुआ और दिल्लीसे ग्यारह माइल पर गाजियाबादमें आपसे जा मिला। दूसरा पड़ाव चौदह माइल पर बेगमाबादमें, और तीसरा पड़ाव तेरह माइल पर मेरठमें हुआ। संघ जिस धर्म शालामें ठहरा वह धर्मशाला पं० गंगारामजी रईस मेरठकी धर्मपत्नी बीबी (श्रीमती) सुंदरकौरने सं० १९६२ में बनवाई है। वहाँ यात्रियोंके लिए सब तरहका

आराम है । वहाँसे रवाना होकर संघ सहित आप मुहाना पहुँचे । यह मेरठसे सत्रह माइल है । अगले दिन संघ हस्तिनापुर पहुँचा और (सं० १९६४ फाल्गुन सुदी १३ सोमवारके दिन) यात्रा कर अपनेको कृतकृत्य मानने लगा ।

आपके यात्रार्थ जानेके समाचार सुन विनोली, खिंवाई, तीतरवाड़ा, लुधियाना, अंबाला और बंबई आदि स्थानोंके भी करीब सौ सवा सौ श्रावक श्राविकाएँ यात्रार्थ आ गये थे। स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरिजी महाराजकी बनाई हुई सत्रह भेदी पूजा पढ़ाई गई । दूसरे दिन दिल्लीकी श्राविकाओंने साधर्मीवत्सल किया । वहाँ पर हमारे चरित्रनायकने पाँच स्तवन बनाये थे उनमेंसे एक यहाँ उद्धृत किया जाता है ।

स्तवन

जय बोलो जय बोलो मेरे प्यारे तीरथकी जय बोलो ॥ अंचलि ॥
हस्तिनापुर तीरथ सारा, कल्याणक हुए जहाँ बारा ।
तीर्थंकर तिग मनमें धारा, धाराजी धारा सुखकर्तारा ॥ ती० ॥ १ ॥
शांतिनाथ प्रभु शांतिकारी, कुंथुनाथ जिनवर बलिहारी ।
श्रीअरनाथके जाऊँ वारी, वारी जी वारी वार हजारी ॥ ती० ॥ २ ॥
प्रथम जिनेसर पारणो कीनो, इक्षुरस श्रेयांसे दीनो ।
मुक्तिरस बदलेमें लीनो, लीनो जी लीनो निज गुणचीनो ॥ ती० ॥३॥
उन्नीसौ चौसठके बरसे, दिल्लीको संघ आयो हरसे ।
धन आतम जे तीरथ फरसे, फरसे जी फरसे वल्लभ तरसे ॥ती०॥४॥

चैत्र वुदी १ सं. १९६५ को हस्तिनापुरसे आप रवाना हुए। संघ भी भगवानकी और गुरु महाराजकी जय बुलाता हुआ वहाँसे रवाना हुआ।

आप वापिस मेरठ पहुँचे। विनौली, खिवाई आदिके श्रावकोंकी प्रार्थनासे आपने यमुनापारके ग्रामोंमें विचरण करने और वहाँके निवासियोंको ज्ञानामृत पान करानेका निश्चय किया। अभी चौमासेमें बहुत दिन बाकी थे इसलिए दिल्लीके श्रावकोंने आपसे वापिस दिल्ली चलनेका बहुत अनुरोध न किया। चौमासा बैठनेके कुछ दिन पहले ही दिल्ली पधारनेकी प्रार्थना कर संघ दिल्ली चला गया।

मेरठमें कुल तीन ही घर श्वेतांबर श्रावकोंके हैं, बाकी सभी दिगंबर हैं। इस लिए आप वहाँ विशेष ठहरना नहीं चाहते थे, मगर दिगंबर भाइयोंके आग्रहसे आपको वहाँ ठहरना पड़ा। दिगंबर भाइयोंने आपके दो सार्वजनिक व्याख्यान बी बी सुंदरकौरकी धर्मशालामें करवाये और एक अपनी जैन धर्मशालामें भी करवाया। उस समय दिगंबरोंका रथोत्सव था इसलिए व्याख्यानोंमें और भी विशेष रौनक होती थी।

आप मेरठसे विनौली पधारे। मेरठ इलाकेमें प्रायः सभी श्रावक दिगंबर हैं। केवल खिवाई और विनौलीमें कुछ श्वेतांबर श्रावकोंके घर हैं और वे स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके प्रतिबोधित हैं। वहाँ आप रोज व्याख्यान बाँचते थे। इसमें प्रायः दिगंबर श्रावक श्राविकाएँ धर्मोपदेश श्रवण कर लाभ उठाते थे।

यहाँके रईस लाला मुसद्दीलालजीने अपनी दुकानें मंदिर जीके लिए दीं और उन्हींमें मंदिर बनवानेका विचार किया। शुभ मुहूर्तमें श्रीजिनमंदिर बनवाना प्रारंभ हो गया था, वह मंदिर बनकर तैयार हो चुका है। प्रतिष्ठा करानेकी एक बार तैयारी की गई थी, मगर किसी कारणवश उस समय न हो सकी। लाला श्रीचंद्रजी और बाबू कीर्तिप्रसादजी बी. ए. एल एल. बी. आदि लाला मुसद्दीलालजीके सुपुत्रोंकी यही उत्कट अभिलाषा है कि, मंदिरजीका काय जैसे हमारे चरित्रनायककी उपस्थितिमें हुआ है वैसे ही प्रतिष्ठा भी आपहीकी उपस्थितिमें हो। उनका खयाल है कि पहले हमारा काय इसी लिए रुक गया था कि, उस समय आप उपस्थित न थे, न हो सकते थे; क्योंकि उस समय आप गुजरातमें विचरते थे।

उनकी इस भावनाको पूण करनेहीके लिए आपने अभी लाहोरसे विहार करते समय सोचा था कि गुजराँवालामें गुरु महाराज श्रीआत्मारामजी महाराजके समाधिमंदिरकी यात्रा कर पाँच सात दिन गुजराँवालामें ठहर, सीधे मेरठकी तरफ विहार कर देना और यह चौमासा दिल्लीमें या आसपासके किसी क्षेत्रमें बिता चामासे बाद मंदिरकी प्रतिष्ठाका प्रबंध कर देना। मगर क्षेत्रस्पर्शना बलवती है! श्रीगुरु महाराजकी कृपासे गुजराँवालामें 'श्रीआत्मानंद जैन गुरुकुल—पंजाब' की स्थापना करनेका प्रबंध हो गया, इस लिए आपको वहीं ठहर जाना पड़ा। गुजराँवाला और विनौलीका अन्तर लगभग ४०० माइलका है।

संवत् १९६५ के वैशाख सुदी ६ को विनौलीमें, अंबाला शहरसे लाला गंगारामजी श्रीशान्तिनाथ स्वामीकी प्रतिमा ले आये थे। बड़े उत्सवके साथ प्रतिमाजीका नगर प्रवेश कराया गया था। इस उत्सवमें विनौलीके और आसपासके गाँवोंके दिगंबर जैनोंने भी बड़े उत्साहसे भाग लिया था।

उसी दिन गुजराँवालामें आचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी और उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजी आदि मुनि-राजोंकी उपस्थितिमें स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) के समाधि मंदि-रमें चरणपादुका स्थापित करनेका उत्सव हुआ था। आपने विनौलीके आनंदको ही गुजराँवालाका आनंद मान लिया था। गुरुभक्तिके उपलक्षमें आपने उस समय जो स्तवन बनाकर भेजे थे उनमेंसे एक हम यहाँ देते हैं—

(देशी–वारनाकी)

वारी जाऊँरे सद्गुरुजी तुम पर वारना जी ॥ अंचली ॥
आतमरामजी नाम धराया, आतमको आराम बताया ।
आतमराम समा सुखदाया, अन्तर घटमें धारना जी ॥ वा० ॥१॥
मिथ्यामततम दिनकर जाना, कामज्वर धन्वंतरी माना ।
सत् चित् आनद पदका पाना, सागर लोभ निवारना जी॥वा०॥२॥
बाह्य निमित्त गुरु उपकारी, कारण मुख्य निजातमधारी ।
आतम ही आतमपदकारी, सीधा अर्थ विचारना जी ॥ वा० ॥३॥

घड़ि घड़ि पल पल गुरुजी ध्याऊँ, मनमें वाणीसे गुण गाऊँ।
कायासे निज शीस नमाऊँ, रूप पराया छारना जी ॥ वा० ॥४॥
पूर्ण कृपा श्रीगुरु हो जावे, आतम परमातम पद पावे।
विजयानंद वधाई गावे, आतम वल्लभ तारना जी ॥ वा० ॥ ५ ॥

आपने विनौलीसे खिंवाईकी तरफ़ विहार किया। अपने साथ मुनि श्रीसोहनविजयजीको रक्खा और दूसरे मुनियोंको दिल्लीकी तरफ़ रवाना कर दिया। वहाँ गुजराँवालासे लाला जगन्नाथजी आपके नामके दो पत्र लेकर आये। उनमेंसे एक १०८ श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी तथा उपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजीकी तरफ़का था और दूसरा था श्रीसंघ गुजराँवालाकी तरफ़का।

उनमेंसे श्रीसंघ गुजराँवालाकी नकल—जो हमें प्राप्त हो सकी-यहाँ दी जाती है। यह पत्र उर्दूमें लिखा हुआ था।

ता० ३०–५–१९०८

श्री आत्मानंद जैनश्वेतांवर कमिटी,

गुजराँवाला (पंजाब)

“ श्री श्री श्री मुनि महाराज वल्लभविजयजी आदि मुनि महाराज, अजतरफ श्रीसंघ गुजराँवालाकी १०८ दफा वन्दना चरनोंमें कबूल हो। अर्ज यह है कि, इस वक्त ढूँढियोंने दूसरी कौमों–यानी खतरी, बिराहमन, आर्यासमाज वगैराको बहोत भड़काया है। जिसके जवाबमें मवरखा २९ मई को बवक्त

७ वजे शामके एक लेक्चर वजरिये मास्टर आत्माराम साकिन अमृतसरके दिलवाया है। जिससे हमारे संघकी यानी जैन-धर्मकी बहुत निंदा यहाँ हुई है। इसलिए ये अमर संघ गुज-राँवालाको वहुत नागवार गुजरा है। अब संघकी जनावके चरनोंमें प्रार्थना ये है के जिस वक्त यह अरीजा खिदमत आलियामें पहोंचे उसी वक्त गुजराँवालाको विहार फर्मावें, क्यों के जिसमें शासनकी वेइज्जती न हो। इस वक्त फौरन् और कामोंको छोड़कर शासनकी उन्नतिकी तरफ खयाल होना चाहिए। इस लिए मुनासिव जानकर आपको तकलीफ दी है। वाकीका हाल वजवानी जगन्नाथके मालूम हो जावेगा। फकत। मुकर्रर ये है के जिस वक्त ये अरीजा पहोंचे उसी वक्त रवाना हो जावें। इस हमारी थोड़ी तेहरीरको हजार दफा खयाल फरमा कर और कबूल करके विहार करें। फकत। विहार गुजराँवालाकी तरफ करके वजरिए तार इत्तला देवें। ताके संघको खुश्नूदीका वाइस हो। फकत।"

(नीचे चार मुखियों के हस्ताक्षर हैं।)

तत्काल ही रवाना होनेके लिए दो तार मिले। उनकी नकलें यहाँ दी जाती हैं।

Gujranwala 30th 8-35 (A. m.)

Musaddilal Piarelal Jaini village Banoli Baraut.

Send muni balabbijeji, with your men to Gujranwala immidiately. Jagannath coming.

Jain community.

(गुजराँवाला ३० वीं, ८-३५ (प्रातःकाल)

मुसद्दीलाल प्यारे लाल जैनी,

मु० बनोली, वड़ौत.

अपने आदमियोंके साथ मुनि वल्लभविजयजीको तत्काल ही गुजराँवाला रवाना करो। जगन्नाथ आ रहा है।

जैन संघ.)

Gujranwala 30th, 16–15 (P. M.)

ShriMuni Ballabbejeji C/o Musaddilal Piarelal Village, Banoli, Baraut.

Start at once Gujranwala great sensation. Shri Kamalbejeji.

(गुंजराँवाला, ३० वीं १६–१५ (सायंकाल)

श्रीमुनि वल्लभविजयजी C/o मुसद्दीलाल प्यारेलाल

मु० बनोली, वडोत.

तत्काल ही रवाना होइए। गुजराँवालामें वड़ी उत्तेजना फैल रही है। श्री कमल विजयजी।)

आपको आचार्य महाराज व उपाध्यायजी महाराजका फिरसे पत्र मिला। उसकी नक़ल यहाँ दी जाति है।

" अत्र श्री गुजराँवाला थी (से) श्रीआचार्य महाराज श्रीविजयकमल सूरिजी तथा वीरविजय आदि साधुना (की) तरफ़थी (से) तत्र श्री विनौली मध्ये मुनि श्रीवल्ल-

भविजयजी आदि जोग, सुखसाता अनुवंदना वंदना बाँचनाजी लखवानुं के (लिखनेका कारण यह है कि) जगन्नाथ मारफत पत्र दिया था । उत्तर आया नहीं. खैर. विशेष लखवानुंके आ पत्र वांचते सार (यह पत्र पढ़ते ही) विहार अत्र गुजराँवाला तरफ़ कर देनाजी । कारण सब जगन्नाथसे विदित हो गया होगा, तो बी इसारा मात्र जणाया जाता है कि आ वखत अत्रेना ढूँढियाओने तमाम सारा शेहरने (को) अपने पक्षमां (में) कर लिया है और जैनतत्वादर्श तथा अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथको रद्द करनेकी वड़ी कोशिश हो रही है । यद्यपि वड़े महाराजने जो जो लिखा है सो सत्य है तथा प्रमाण सहित है और पुस्तकों भी मौजूद है तथापि इनोंका पक्ष जादा है । सही सही सिद्ध करना ब्राह्मण लोको रोला पाके (शोर मचाके) करवा देवे तेम जणातुं नथी (ऐसा मालूम नहीं होता) माटे (इसलिए) आ वखत तमारुं (तुम्हारा) जरूर काम छे. (है) तुम्हारी फुरती वहोत है । यकीन है तुम्हारा आनेपर अच्छा फतेह होगा । ओ (और) विचार लांबो छोड़ी (लंबा विचार छोड़ कर) अत्रेथी आवेला श्रावको साथ जरूर विहार करना जी । यद्यपि गरमी है, दूरका मामला है; परन्तु आ वखत एवोज छे (ऐसा ही है) जो कि प्राणतो अर्पण थई जाय (हो जायँ) परन्तु गुरुका वाक्योंने धक्को न लागे, इस लिए जोरमारके दवके लिखा जाता है; वस इतना मात्रसे समझ

लेना जी। तुमो (तुम) गुणवानको ज्यादा क्या लिखनाजी चार साधु जो के दिल्ली हैं उनको दिल्लीकी इजाजत दे देनाजी। तेमज तुमो सोहनविजयजीको साथ लेकर फौरन आवो. एज। जेठ वदी १४ पंजाबीः वीर विजय

आज आ वखते एटले (यानी) दिनके छः बजे पर अमृत सरसे बोलाया पंडित आपणा (अपने) ग्रंथोंने (को) रद करवानु (का) भाषण दे रहा है। नतीजा क्या आवेगा ते (उसकी) खबर नथी (नहीं) औ सा (?) ढूँढकाओनो पक्षकरी तमाम शहेर उश्केराई गयुं छे (उत्तेजित हो गया है) लखवा समर्थ नथी (लिखनेका सामर्थ्य नहीं है)

ताजा कलम—आ पत्र वाँची तुरत विहार करो अत्रेना माणसो रोकायला छे. (यहाँके आदमी रुके हुए हैं) माटे हाल विनौलीसे चार आदमी साथ लेकर आओ। मुसद्दीलालको कहना अत्रे थी मुसद्दीलालको तार दिया जायगा तथा अंबाले पत्र लिख दिया है। वांके चार आदमी आजायगा। बीजा-वृत्तांत जगन्नाथके मुखसे सुण लेना जी।"

हमारे चरित्र नायकको आचार्यश्रीने और संघने पुनः गुजराँवाला क्यों आग्रह पूर्वक बुलाया इसके कारणका आभास तो पाठकोंको पत्रोंसे हो ही गया होगा; मगर पूरा समझमें नहीं आया होगा, इस लिए उसे संक्षेपमें यहाँ बतला देते हैं।

पाठक यह जानते हैं कि हमारे चरित्रनायकके साथ शास्त्रार्थ करके स्थानकवासी सामानेमें और नाभेमें बुरी तरह

हारे थे। लुधियाने में उन्हें नीचा देखना पड़ा था और अमृत-सरमें तो बड़े ही फजीहत हुए थे। इस लिए वे मन ही मन श्वेताम्बरोंसे नाराज थे और बदला लेनेका मौका देख रहे थे; मगर हमारे चरित्रनायककी उपस्थितिमें उन्हें अवसर नहीं मिलता था।

इधर स्थानकवासियोंके मनकी यह हालत थी उधर श्वेतांबर अपने गुरुकी विजयसे प्रसन्न थे। जहाँ तहाँ उत्सव होते थे और आनंदकी बधाइयाँ बजती थीं।

इस तरहकी दशामें सं० १९६५ की वैशाख शुक्ला १० ता. ७ मई सन् १९०८ ईस्वीको गुजराँवालामें बड़ी धूमधामके साथ स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री १००८ श्रीविजयानंद सूरिजीकी वेदी-प्रतिष्ठा १०८ श्रीआचार्य महाराज श्रीविजय-कमल सूरिजीके हाथसे हुई। उसमें सार्वजनिक–पब्लिक व्याख्यान हुए। व्याख्यानोंमें यह बात आये बिना कैसे रह सकती थी कि आचार्यश्री पहले स्थानकवासी थे? सारे शहरमें श्वेतांबरोंकी प्रशंसाका नया दौर प्रारंभ हुआ।

स्थानकवासी इस समय निर्भय हो गये थे। जिन महात्माके आगे उनको जबान खोलनेका हौसला नहीं पड़ता था वे पंजाबसे रवाना हो चुके थे। उन्होंने बदला लेना स्थिर किया; स्थिर करके भी वे स्वयं मैदानमे आनेकी हिम्मत न कर सके। उन्होंने स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजके बनाये हुए अज्ञानतिमिरभास्करके उस हिस्सेका उर्दूमें अनुवाद करके छपवाया, जिसमें हिन्दुग्रं-

थोंमें हिंसा आदिकी बातोंका होना सिद्ध किया गया है। साथ ही गुजराँवालाके हिन्दु वैसे भी उत्तेजित किये गये। इतना ही नहीं, सुना जाता है कि श्वेतांबरोंके साथ शास्त्रार्थ करनेमें, श्वेतांबरोंको नीचा दिखानेका प्रयत्न करनेमें, जो कुछ खर्चा हो वह भी देनेका अभिवचन देकर उन्हें उत्तेजित किया, खर्चा देते भी रहे। गुजराँवालामें शास्त्रार्थकी और नोटिसवाजीकी धूम मच गई।

उस समय हिन्दुओंकी तरफसे पं. भीमसेनजी शर्मा, विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र और पं. गोकुलचंदजी आदि थे। श्वेतांबरोंकी तरफसे, पं. श्रीललितविजयजी गणि, जलंधरनिवासी यति (पूज) जी श्रीकेशरऋषिजी, और पं. ब्रजलालजी शर्मा आदि थे।

श्वेतांबरोंकी तरफसे उपर्युक्त विद्वानोंके और श्रीआचार्य महाराजजी आदि १३ साधुओंके होते हुए भी क्या साधु और क्या श्रावक सबके–दिलोंमें यह समाया हुआ था कि, हमारी जीत वल्लभविजयजीके आये विना न होगी। सबको बड़ी व्याकुलता हो रही थी। उसीका यह परिणाम था कि, श्री आचार्य महाराजको और श्रीउपाध्यायजी महाराजको आपके पास पत्र भेज कर गुजराँवाला आनेके लिये आज्ञा देनी पड़ी!

आचार्य महाराज, उपाध्यायजी महाराज तथा श्रीसंघके पत्रोंसे पाठक भली प्रकार समझ सकते हैं कि, सबकी दृष्टि

हमारे चरित्रनायक पर थी। आप तत्काल ही अर्थात् जेठ-सुदि पंचमीको वहाँसे रवाना हो गये।

जेठका महीना, कड़ाकेकी धूप मानों आकाशसे सूरज आग बरसा रहा है। पशु पक्षी भी व्याकुल होकर सायाका आश्रय ले रहे हैं। लोगोंके लिए घरसे दस बजेके बाद बाहर निकलना जान पर आता है। अमीर खसकी टट्टियाँ लगाये हवादार घरोंमें बैठे भी गरमीसे व्याकुल हो उफ़! उफ़! कर बार बार नौकरको जल्दी जल्दीसे पंखा खींचनेका तकाजा कर रहे हैं। घरके बाहिर जमीन आगसी तप रही है। नंगे पैर जमीन पर पैर रखना मानों भूभल पर पैर रखना है। ऐसे समयमें हमारे चरित्रनायक गुरुवचनको सत्य प्रमाणित करने, धर्मकी प्रभावना करने, श्रीआचार्य महाराजजी तथा श्रीउपाध्यायजी महाराजकी आज्ञाको पालन करनेके और चतुर्विध संघका मान रखनेके लिए बिनौलीके पास खिंवाई गामसे रवाना हो गये। साथमें आपके सुयोग्य शिष्य सोहनविजयजी थे। नंगे पैर दोनों गुरु शिष्य उस भूभलसी भूमि पर चले जा रहे हैं। सूर्य अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर जमीनको जला रहा है, आप धर्मकी खातिर पैदल चले जा रहे हैं। पहले दिन आपने वीस माइलका सफ़र किया।

गाँवमें पहुँचे। लोगोंने देखा कि, आपके पैरोंमें छाले पड़ गये हैं। थक कर शरीर चूर चूर हो गया है। मगर आपको इसका कुछ खयाल नहीं था। आपको सिर्फ एक ही बातका खयाल था कि, मैं किस तरह गुजराँवाला पहुँचूँ।

दूसरे दिन फिर रवाना हुए। गरमी उसी तरह पड़ रही थी। आह! यही तो आपकी साधु चर्याकी परीक्षा थी। परिसह कैसे शान्तिके साथ सहे जाते हैं इसीका तो यह अमली सबक था! कवि भूधरदासजीने साधुवंदना करते कैसा सुंदर लिखा है—

" सूखें सरोवर जलभरे, सूखें तरंगिणीतोय।
बाटें बटोही ना चलें, जब घाम गरमी होय॥
तिस काल मुनिवर तप तपें, गिरिशिखर ठाड़े धीर।
वे साधु मेरे उर बसो, मेरी हरो पातक पीर॥

× × × ×

शीतऋतु जोरे अंग सब ही सकोरें तहाँ,
अंगको न मोरें नदी धोरे धीर जे खरे।
जेठकी झकोरे जहाँ अंडा चील छोरे पशु,
पंछी छाँह लोरे गिरि कोरे तप जे धरे।
घोर घन घोर घटा चहुँ और डोरे,
ज्यूँ ज्यूँ चलत हिलोरे त्यूँ त्यूँ फोरे वल वे अरे।
देहनेह तोरें परमारथ मुँ प्रीति जोरें,
ऐसे गुरुओंरे हम हाथ अंजुली करें॥ २॥

आप सवारीमें चढ़ नहीं सकते थे। पैरोंकी रक्षाके लिए जोड़े—कपड़ेके जोड़ेतक—पहन नहीं सकते थे; शरीरको धूपसे बचानेके लिए छत्री नहीं लगा सकते थे; गरमीकी शिद्दतसे सूखते हुए गलेको, किसी कूए, वावड़ी या राहगीरोंके लिए लगी हुई प्याऊसे, पानी पीकर, तर नहीं कर सकते थे। झरने-

के ठंडे पानीसे हलकको गीला नहीं कर सकते थे। नंगे पैर पैदल चलना, धूपमें जलते हुए आगे बढ़ना और प्यास लगने पर किसी वृक्षकी सायामें थोड़ी देर बैठकर गरम पानीसे—जो आप गाँवमेंसे भरकर चले थे—अपना हलक़ गीला कर लेना इसके सिवा कोई उपाय नहीं था। साधुचर्याके कठोर बंधनमें बँधे हुए—साधुओंके आचारको पूर्ण रूपसे पालते हुए ऐसी गरमीमें,—जेठकी कड़ी धूपमें—यात्रा करना कितना कठिन काम था उसका वर्णन करनेकी हमारी क्षुद्र लेखनीमें शक्ति नहीं है।

इसी तरह कष्ट सहते और पन्द्रह, वीस कभी इससे भी अधिक माइलका सफ़र करते आप गुजराँवालाकी तरफ़ चले जा रहे थे। रस्तेमें लोग आपको कहते,—"गुरुदेव! आपके पैर छिल गये हैं। लोहू टपकने लग गया है। आप कुछ समयके लिए आराम कीजिए।" तो आप उत्तर देते,—"श्रावकजी! यह तो पौद्गलिक शरीरका धर्म है। वह अपना धर्म पालता है; पाले। मुझे भी अपना धर्म पालना है। जैन धर्मकी लोग अवहेलना कर रहे हैं। मैं कैसे आराम ले सकता हूँ? मुझे उसी दिन आराम मिलेगा जिस दिन मैं गुजराँवाला पहुँचूँगा और स्वर्गीय गुरु महाराजके वचन सिद्ध कर धर्मकी ध्वजापताका फहराती देखूँगा।" लोग भक्तिभावसे आपके चरण स्पर्श कर साश्रु नयन आपकी ओर देखते हुए मौन हो जाते।

इस स्थितिको देखकर तुलसीदासजीने रामायणमें हनुमा-

नजीक़े लंका जानेका जो वर्णन किया है वह आँखोंके सामने आ खड़ा होता है। वे लिखते हैं—

चौपाई—जिमि अमोघ रघुपतिके बाना, ताहीं भाँति चला हनुमाना।
जलनिधि रघुपति दूत विचारी, कह मैनाक होउ श्रमहारी ॥

सोरठा—सिंधुवचन सुनि कान, तुरत उठेउ मैनाक तब।
कपि कहँ कीन्ह प्रणाम, बार बार कर जोरिके ॥

दोहा—हनूमान तेहि परसि करि, पुनि तेहिं कीन्ह प्रणाम।
रामकाज कीने बिना, मोहि कहाँ विश्राम ॥

अमृतसर निवासी लाला हरिचंदजी दुग्गड अभी ता० २२–३–२५ को हमें बंबईमें मिले थे। वे कहते थे कि,–"जब महाराज साहब अमृतसरमें पहुँचे तब उनके पैर सूज रहे थे। उनके पैरों पर हाथ लगानेसे उन्हें कष्ट होता था। हम लोगोंने अर्ज की–"कृपालो! आपके और सोहनविजयजी महाराजके भी पैर सूज रहे हैं। ऐसी दशामें आप आगे बढ़ेंगे तो ज्यादा तकलीफ होगी। आप पाँच सात दिन यहाँ आराम कीजिए। फिर आगे पधारिए। गुजराँवालेमें भी पंच मुकर्रर करके मामला निपटानेकी बात चल रही है।"

आपने फ़र्माया:–"श्रावकजी! पहले धर्म है, शरीर नहीं। धर्मकी अवहेलनाके सामने शारीरिक कष्ट तुच्छ हैं। मैं गुजराँवाला पहुँचकर ही दम लूँगा। बीचहीमें फैसला हो गया तो बहुत अच्छी बात है।"

दैवयोगसे श्रीसोहनविजयजी महाराजकी आँखोंमें दर्द हो गया। विवश आपको आठ दिन वहीं ठहरना पड़ा। आँखोंका रोग ऐसा नहीं था कि उसकी अवहेलना की जाती। वगैर आँखोंके मार्ग कैसे देखा जा सकता था? खिंवाईसे रवाना होनेके बाद आपने अमृतसरके सिवा दूसरी जगह कहीं भी एक रातसे ज्यादा विश्राम नहीं लिया था।

अमृतसरसे विहार कर आप लाहोरमें पहुँचे और उसी दिन शामको वहाँसे रवाना होकर रावीके किनारेपर सिक्खोंकी धर्मशालामें पहुँचे। उस जगह मालूम हुआ कि, मध्यस्थ लोगोंने फैसला दे दिया है और उन्होंने आत्मारामजी महा-राजके वनाये हुए ग्रंथको सत्य बताया है। गुजराँवालाकी पूरी कारवाई उत्तरार्द्धमें 'गुजराँवालाका शास्त्रार्थ' हेडिंगवाले निवंधमें दी गई है।

आप आषाढ़ सुदी ११ सं. १९६५ के दिन गुजराँवालामें पहुँचे। श्रावकोंने बड़े उत्साहके साथ स्वागत किया और जुलूसके साथ आपको शहरमें ले जाना चाहा। आपने कहाः—"श्रीआचार्य महाराज, श्रीउपाध्यायजी महाराज और श्रीचारित्रविजयजी महाराजसे वृद्ध, बड़े और रत्नाधिक पूज्य यहाँ विराजमान हैं, इस लिए मैं बड़ोंके सामने, जुलूससे जाकर, उपस्थित होना अनुचित समझता हूँ।"

श्रीसंघने आचार्यश्री आदिसे प्रार्थना की। उन्होंने सम-यानुकूल योग्य उदारता दिखाई और आपको यह कहलाया

कि,—" तुम विनयवान हो, तुम्हारा यही धर्म है; मगर यह मौका ऐसा ही है। तुमने गुरु महाराजके नाम पर प्राणतक न्योछावर किये हैं, लोगोंमें उत्साह बढ़ रहा है, अतः धर्मकी प्रभावनाके लिए और गुरु महाराजकी यशोदुंदुभि चहुँ ओर बज उठे इस लिए, हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम श्रीसंघकी आज्ञाको स्वीकार कर लेना।"

आपने बड़ोंकी आज्ञाको शिरोधार्य कर विवश जूलूससे जाना स्वीकार कर लिया। बड़ी धूमधामके साथ जुलूस निकला। उपर्युक्त तीन महात्माओंके सिवा सभी साधु आपके स्वागतार्थ सामने आये थे इस लिए नगरप्रवेशके समय आपके साथ साधुओंकी एक अच्छी संख्या हो गई थी।

श्रीमंदिरजीमें दर्शन, चैत्यवंदन कर आप उपाश्रयमें पधारे। उस समय श्रीआचार्य महाराज आदि वृद्ध, महात्माओंने भी आपका शास्त्रानुसार उचित स्वागत किया। आपने भी श्री-आचार्य महाराजजी आदिके चरणोंमें विधि पूर्वक वंदना की। दूरसे आये हुए साधु अपने बड़ोंके चरणोंमें किस तरह वंदना किया करते हैं सो देखनेका अवसर श्रीसंघ गुजराँवालाके लिए और बाहरसे आए हुए अन्यान्य भाइयोंके लिए यह पहला ही था। श्रीजिनेश्वरके विनयमार्गको देखकर अनेक भव्योंकी आँखोंसे हर्षाश्रु बह चले। सभीके मुखसे वाह! वाह!! और धन्य! धन्य!! की ध्वनि निकल पड़ी।

श्रीआचार्य महाराज आदिने आपकी पीठपर हर्ष पूर्वक

हाथ फिराया और कहा,—"यदि सच्चे गुरुभक्त हों तो तुम्हारे ही समान हों । तुमने स्वर्गवासी गुरुदेवके इस कथनको,—कि पंजावकी सम्भाल वल्लभ लेगा, सत्य कर दिखाया है। जाओ ! व्याख्यानके पाट पर बैठ कर श्रीसंघको थोड़ासा व्याख्यान सुनाओ ! कई दिनोंसे श्रावकोंको तुम्हारी जवानसे जिनवचनामृत पानकरनेका अवसर नहीं मिला है, आज पिलाकर उन्हें धन्य बनाओ । "

आपने बद्धाञ्जलि होकर 'तहत्ति' कहा और व्याख्यान मंडपमें जाकर श्रोताओंको उपदेशामृत पिलाया । जब श्रावकों-को यह मालूम हुआ कि आजसे नित्य प्रति उन्हें व्याख्यान सुननेका सौभाग्य प्राप्त होगा तब उन्होंने, चौवीस महाराजकी जय, श्रीआत्मारामजी महाराजकी जय, श्रीमद्विजयकमल-सूरि महाराजकी जय ! श्रीउपाध्यायजी महाराजकी जय ! श्रीचरित्रविजयजी महाराकी जय! श्रीवल्लभविजयजी महाराजकी जय ! इस तरह जय ध्वनिके साथ अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

आप कई दिनों तक निरंतर व्याख्यान देते रहे। एक दिन आपने आचार्यश्रीसे निवेदन किया कि, गुजराँवालाके शास्त्रार्थकी कार्रवाईका संग्रह होना आवश्यक है। इस लिए यदि आप व्याख्यानके लिए किन्हीं दूसरे मुनि महाराजको आज्ञा फ़र्मावें और मुझे इस कार्यको करनेकी आज्ञा फ़र्मावें तो उत्तम हो।"

आचार्यश्रीने आपकी योग्य प्रार्थनाको स्वीकार किया और व्याख्यानके लिए श्रीललितविजयजीको हुक्म दे दिया।

बीच बीचमें कभी कभी श्रीउपाध्यायजी महाराज और अन्यान्य साधु महाराज भी व्याख्यानकी कृपा करते रहे थे; ज्यादातर व्याख्यानका भार आपके शिष्य रत्न श्रीललित-विजयजी पर ही रहा था। मुख्य कारण इसका यह था कि आचार्य महाराज और उपाध्यायजी महाराजकी तबीअत गरमीके सबबसे जैसी चाहिए वैसी अच्छी नहीं रहती थी; श्रीचारित्रविजयजी महाराज वृद्धावस्थाके कारण असमर्थ थे और अन्य जो साधु थे वे गुजराती होनेके कारण पंजाबमें व्याख्यान नहीं बाँच सकते थे।

श्रीसंघके आग्रहके कारण आचार्यश्रीने पर्युषण पर्वमें कल्प-सूत्रके प्रथम व्याख्यानकी और संवत्सरीके व्याख्यानकी अर्थात् बारसां—कल्पसूत्र मूलमात्रके व्याख्यानकी कृपा की थी; शेष कल्पसूत्रके व्याख्यान दोनों गुरु शिष्योंने यानीं आपने और श्रीललितविजयजीने ही समाप्त किये थे।

आपकी कल्पसूत्र बाँचनेकी छटा अजब है। यह स्वर्गीय गुरुदेवकी छटाका अनुकरण है। इसे देखकर मुनि श्रीलब्धिविजयजी (वर्तमानमें श्रीविजयलब्धिसूरिजी) चकित हो गये थे। उन्होंने कहाः—" आपका कल्पसूत्र सुनानेका ढंग बहुत ही बढ़िया है। मैं भी आगेसे इसी ढबसे बाँचा करूँगा। मेरा उद्देश्य आपके व्याख्यान सुननेमें, आपकी व्याख्यान-शली, सीखना था सो वह उद्देश्य पूण होगया। "

व्याख्यानसे फुर्सत पाकर आपने गुजराँवालामें दो पुस्तकें तैयार कीं। उनमेंसे एकका नाम है—' विशेषनिर्णय ' और

दूसरीका नाम है ' भीमज्ञानत्रिंशिका ' पहलीमें संक्षेपसे और दूसरीमें विस्तारके साथ यह सिद्ध किया गया है कि,—वेदादि शास्त्रोंमे गोमेध, नरमेध और अश्वमेधका विधान है और गौ, मनुष्य और घोड़ेका हवन करना चाहिए। इतना ही क्यों वेदादि शास्त्रोंमें मांसभक्षणका भी स्पष्ट विधान है। इन बातोंको सिद्ध करनेके लिए आपने अपनी तरफसे कुछ न लिख कर प्राचीन शास्त्रोंके—वेदों, भाष्यों, सूत्रों, स्मृतियों और उन पर की गई टीकाओंके—वाक्य उद्धृत किये हैं। साथ ही हिन्दुओंके प्रसिद्ध विद्वान पंडित भीमसेनजी, पं० ज्वालाप्रसादजी, लोकमान्य तिलक आदिकी सम्मतियाँ भी—जो शास्त्रोंके आधारपर दी गइ हैं—उद्धृत की गई हैं। ये प्रमाण १८५ ग्रंथों और पत्रोंसे संग्रह किये गये हैं।

सं० १९६५का बाईसवाँ चौमासा आपने गुजराँवालाहीमें आचार्य श्रीविजयकमलसूरिजीके तथा श्रीउपाध्यायजी महाराजके चरणोंमें किया था। उस समय वहाँ कुल चौदह साधु थे। उनके नाम ये हैं,—

(१) आचार्य महाराज श्री १०८ श्रीमद्विजय कमल सूरिजी (२) १०८ श्रीउपाध्यायजी महाराज श्रीवीरविजयजी (३) १०८ श्रीवृद्ध मुनि महाराज श्रीचारित्रविजयजी (४) हमारे चरित्रनायक १०८ मुनि श्रीवल्लभविजयजी महाराज (५) मुनि श्रीअमीविजयजी महाराज (६) मुनि श्रीरविविजयजी महाराज (७) मुनि श्रीहिम्मतविजयजी

महाराज (८) मुनि श्रीविनयविजयजी महाराज (९) मुनि श्रीललितविजयजी महाराज (वर्तमानमें पंन्यास तथा गणि) (१०) मुनि श्रीनयविजयजी महाराज (११) मुनि श्री केसरविजयजी महाराज (१२) मुनि श्रीउत्तमविजयजी महाराज, (१३) मुनि श्रीसोहनविजयजी महाराज (वर्तमानमें पंन्यास, गणि, तथा उपाध्याय) (१४) मुनि श्रीलब्धिविजयजी महाराज (वर्तमानमें आचार्य श्रीविजयलब्धि सूरिजी)

× × × ×

(सं० १९६६ से सं० १९७०)

चातुर्मास समाप्त होनेपर श्रीआचार्य महाराज और श्री उपाध्यायजी महाराजकी आज्ञा पाकर आपने गुजराँवालासे विहार किया। अमृतसर, जंडियाला आदि स्थानोंमें होते हुए आप जालंधर पधारे। वहाँ आपने श्रीहीरविजयजी महाराज, श्रीउद्योतविजयजी महाराज और स्वामी श्रीसुमतिविजयजी महाराजके दर्शन किये। वहाँसे रवाना होकर होशियारपुर फगवाड़ा, लुधियाना, अंबाला और दिल्ली आदिके लोगोंको उपदेशामृत पिलाते हुए आप जयपुर पहुँचे।

जयपुरमें बड़े उत्साह और ठाठबाटके साथ आपका स्वागत हुआ। पंजाबसे विहार करते हुए पं. श्रीललितविजयजी भी जयपुर आ मिले। इनके साथ खिवाइके एक ब्राह्मण भी थे। नाम था कृष्णचंद। वे दीक्षा लेनेके लिए आये थे। होशियारपुरनिवासी अच्छर और मच्छर दोनों सगे भाइ ओसवाल नाहर गोत्रीय संयम ग्रहण करनेके इरादेसे कितने ही महीनोंसे आपके पास अभ्यास करते थे।

जयपुरमें खरतरगच्छवालोंका बड़ा जोर था। तपगच्छके साधुओंका टिकाव वहाँ कठिनतासे हो सकता था। मगर जब आप वहाँ पहुँचे हैं तब सभी गच्छवालोंने आपका बड़ा सत्कार किया। आपके पुण्योदयने और आपके एकता वर्द्धक, जैन-धर्मके शुद्ध उपदेशने सभीको आपका भक्त बना दिया। जो एक बार आपकी वाणी सुन लेता वह फिर उसे सुननेके लिए व्याकुल रहता। हरेक कहता,— अपने जीवनमें पहली ही बार मैंने ऐसे मधुर भाषी और सभी गच्छवालोंको अपने अपने गच्छानुसार धर्मक्रिया करते हुए संपसे रहनेका उपदेश देने वाले साधु देखे हैं।

आप ढ़ाई महीने तक जयपुरमें रहे। जब कभी आप विहार करनेको उद्यत होते लोग कहते अभी और थोड़े दिन विराजिए। कौन अमृत पिलानेवालेको जाने देना चाहता है? प्रति दिन मंदिरोंमें पूजा प्रभावना होती थी। आज इस मंदिरमें है तो कल उस मंदिरमें।

पूजाके वक्त एक समा बंध जाता था। जिस समय साधु-मंडली अपने सुरीले कंठोंसे पूजा गाती सभी आनंदमें झूमने लग जाते। पं० श्रीललितविजयजीका गला तो मोहन मंत्र था। इतना मधुर और इतना लोचदार! श्रोता मंत्रमुग्ध सर्पकी भाँति झूमते रहते। तीन चार घंटे इस तरह निकल जाते जैसे दिनभर परिश्रम करनेवाले मनुष्यकी रात एक ही झपकीमें निकल जाती है! पूजाके समय श्वेतांबर श्रावकोंके सिवा दूसरे भी अनेक स्त्रीपुरुष मंदिरमें जमा हो जाते थे।

जब आप विहार करनेका दृढ इरादा कर चुके तब जयपुर-के संघने विनती की कि, आपके साथ जो दीक्षा लेनेवाले भाग्यशाली हैं उन्हें यहीं दीक्षा देकर हमें अनुग्रहीत कीजिए। आपने श्रावकोंकी इस विनतीको स्वीकार कर लिया।

संयमलेनेवालोंके वारिसोंको सूचना दी गई। वे आये मगर दीक्षाके उत्सुकोंको वैराग्यमें दृढ देखकर, आज्ञा दे चले गये।

पन्द्रह दिनतक बड़ी धूमधामसे उत्सव हुआ। पंजाब, मारवाड़, मेवाड़, मालवा और गुजरात आदि सभी स्थानोंके श्रावक वहाँ जमा हुए थे। बाहरसे आये हुए लोगोंमें पंजा-बियोंकी संख्या अधिक थी। जयपुरके संघने सभी अतिथि-योंका अच्छा आदरसत्कार किया था। दीक्षा मोहनवाड़ीमें—जो गलता दर्वाजेके बाहिर है—हुई थी। हजारों नरनारी मोहनवा-ड़ीमें सवेरेहीसे जाकर जमा हो गये थे। पंजाबी श्रावक दीक्षा लेनेवालोंकी पालकियाँ उठाकर गये थे। दीक्षाके दिन नारि-यलकी प्रभावना हुई थी। कुल नव हजार नारियल खर्च हुए थे। दीक्षामहोत्सवका सारा खर्चा जयपुरनिवासी सेठ फूलचंदजी कोठारीकी माता इन्द्रबाईने किया था। दीक्षा सं. १९६५ के चैत्र वदि ५ के दिन हुई थी। अच्छर और मच्छरका नाम क्रमशः विद्याविजयजी और विचारविजयजी रक्खा गया। दोनों हमारे चरित्रनायकके शिष्य हुए। कृष्णचंद्रका नाम तिलकविजयजी रक्खा गया। वे पं० श्रीललितविजयजी महाराजके शिष्य हुए।

जयपुरमें दीनदयालजी तिवारी एक बहुत ही सज्जन पुरुष थे। उन्हें धार्मिक वातोंसे विशेष स्नेह था। वे हरेक मजहबकी वातको समझते और धर्मगुरुओंसे मिलते थे। वे उस समय मुन्सिफ थे। उन्हें ऐसा शौक लगा कि वे हमेशा आपका व्याख्यान सुने विना नहीं रहते। यदि कभी किसी खास कार्यके कारण व्याख्यानके समय नहीं आ सकते थे तो दुपहरको अथवा शामके वक्त आकर उस दिनके व्याख्यानकी वातें संक्षेपमें आपसे पूछ कर पहलेका अनुसंधान कर लेते थे।

सं० १९६५ में लार्ड कर्जनने वंगालको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था। इससे वंगालमें वड़ी हल चल मची हुई थी। कई क्रान्तिकारी वंगाली लोग खीजकर षडयंत्रकारी वन गये और सरकारी अफ्सरोंकी हत्याएँ करने लग गये थे। वे रहा करते थे प्रायः सन्यासियों और साधुओंके वेशमें। इस लिए उनपर सरकारी अफ्सरोंकी कड़ी निगाह रहती थी।

एक दिनकी वात है। हमारे चरित्रनायक अपने दो तीन शिष्यों सहित जयपुर स्टेशनके पासवाले मंदिरजीके दर्शन करके वापिस आरहे थे। साथमें जयपुरवाले गुलावचंद्रजी ढड्ढा एम. ए. के वड़े भाई लक्ष्मीचंद्रजी भी थे। उसी समय किसी गोरे अफ्सरकी वग्घी वहाँसे निकली। उसने साधु-ओंको देखा। एक तो वंगाली लोग वैसे नंगे सिर ही रहा करते हैं, दूसरे उस समय क्रान्तिकारी वंगाली प्रायः साधुओंके वेशमें रहते थे; गोरा यह जानता नहीं था कि वंगालियोंके

सिवा और भी कई नंगे सिर रहा करते हैं। जैन साधुओंके संबंधमें तो उसे जरासी भी जानकारी न थी। अतः उसने समझ लिया कि ये बंगाली ही हैं। बँगले पर पहुँचकर उसने सूचना दी कि, लक्ष्मीचंद्रजीके यहाँ कुछ बंगाली हैं। वे कौन हैं और क्यों आये हैं? इसकी जाँच करो।

पुलिसने लक्ष्मीचंद्रजीको बुलाया और पूछाः—"तुम्हारे घरपर बंगाली महमान कौन हैं?"

लक्ष्मीचंद्रजीने कहाः—"मेरे घर पर तो कोई बंगाली महमान नहीं है।"

पुलिस अफ्सर बोलाः—"हैं क्यों नहीं? आप उनके साथ स्टेशनसे आ रहे थे तब साहबने आपके साथ उन्हें, देखा था, इतना ही नहीं आपने, साहबसे सलाम भी की थी।"

लक्ष्मीचंद्रजी मुस्कुराये और बोलेः—"ओह! साहबको बड़ा भ्रम हुआ है। जिनके साथ आते हुए साहबने मुझे देखा था वे तो हमारे गुरु महाराज थे। स्टेशनके पास पुग-लियोंकी (पुगलिया ओसवालोंका एक गोत्र है) निशियाँ है। उसमें जिन मंदिरके दर्शन करानेके लिए मैं गुरु महाराजके साथ गया था और उन्हींके साथ वापिस आ रहा था। आप जानते हैं कि, जैनसाधु नंगे सिर ही रहते हैं और उन्हें नंगे सिर देख कर साहबने बंगाली समझ लिया है"

असली बातको समझ कर पुलिस अफ्सर खिल खिला कर हँस पड़ा और लक्ष्मीचंद्रजीसे बोलाः—"आप जाइए मैंने मतलब समझ लिया है।"

पुलिसने साहबको सारी बातें समझा दीं, तो भी उसके दिलसे खटका न निकला। उसने कहाः—"मुमकिन है यही बात सच हो, तो भी सावधान रहना अच्छा है। तुम इस बातका खयाल रखना कि, वे यहाँ क्यों आये हैं? क्या करते हैं? लोगोंको क्या उपदेश देते हैं? कहाँ ठहरे हैं आदि।"

मुन्सिफ महाशय और पुलिस अफसरका आपसमें अच्छा स्नेह था। उसने सारी बातें मुन्सिफ साहबसे कहीं। मुन्सिफ साहब हँसे और बोलेः—"अच्छी बात है। मैं खुद इसकी जाँच करूँगा। तुम जानते हो कि, मुझे धर्मसे ज्यादा प्रेम है; धर्मकी बातें सुनना मैं बहुत ज्यादा पसंद करता हूँ। वैसे भी कोई बात होगी तो मुझे जाँच तो करनी ही पड़ेगी, इस लिए मैं स्वयं उनके व्याख्यानमें जाऊँगा। यदि वे वास्तविक साधु होंगे तो मुझे धर्मकी प्राप्ति होगी और यदि वे ढौंगी होंगे तो भविष्यमें मुकदमेके समय मुझे कम कठिनता होगी।"

दूसरे दिन सवेरे ही मुन्सिफ साहब व्याख्यानमें चले गये। एक वार लोगोंके दिलमें भय पैदा हुआ। भय इस लिए हुआ कि, उन्होंने लक्ष्मीचंद्रजीके द्वारा सारी बातें सुनी थीं; मगर थोड़ी देरके बाद उनका भय जाता रहा। उन्हें मुन्सिफ साहबके बोल चालसे मालूम हुआ कि, वे किसी बुरे इरादेसे यहाँ नहीं आये हैं। जबतक व्याख्यान होता रहा वे ध्यान-पूर्वक सुनते रहे। अनेक लोग उनकी तरफ़ एक टक देख

रहे थे। उनके चहरेसे मालूम हुआ कि, उन्हें व्याख्यानमें बड़ा आनंद आ रहा है और वे तल्लीन होकर उसे सुन रहे हैं।

जब व्याख्यान समाप्त हो चुका तब मुन्सिफ साहब बोलेः– "मेरी आयु पचास बरससे कुछ ज्यादा ही होगी। बचपन-हीसे मुझे धर्मकी बातें सुननेका शौक है। किसी मजहबका व्याख्यान हो,–धर्मकथा हो मैं यथासाध्य सुननेके लिए जरूर जाता हूँ। ये लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं। मैं गुणग्राही हूँ। जहाँसे गुण मिलता है मैं वहींसे गुणग्रहण करता हूँ। किसीकी प्रशंसा उसके सामने ही करना अनुचित है, तो भी मुझसे यह कहे विना नहीं रहा जाता कि, मुझे आजके व्याख्यानमें जैसा आनंद मिला है वैसा आनंद उम्रमें कभी नहीं मिला; आनंदकी अनुभूति शब्दोंके द्वारा प्रकट नहीं की जा सकती। व्याख्यान क्या कल भी होगा?"

हमारे चरित्रनायकने फर्मायाः—"साधुओंका और काम ही क्या है? गृहस्थोंके अन्नजलसे साधुओंका निर्वाह होता है इस लिए साधुओंका कर्त्तव्य है कि, वे बदलेमें गृहस्थोंको उपदेश दें, उन्हें धर्मकार्यमें लगे रहनेकी प्रेरणा करें और उन्हें उनके उद्धारका मार्ग बतावें, उस मार्ग पर चलनेमें उन्हें सहायता दें। इस लिए जब तक हम यहाँ रहेंगे तब तक अपना कर्तव्य करते ही रहेंगे।"

मुन्सिफ साहबने पूछाः–"आप कब तक यहाँ विराजेंगे?

आपने उत्तर दियाः–"जब तक यहाँके अन्नजल हैं।"

मुन्सिफ़ साहब नमस्कार करके चले गये। तबसे वे रोज व्याख्यानमें आते थे। एक दिन वे देरसे आये। देखते क्या हैं कि दो पुलिकसे मनुष्य श्रोताओंके पीछेकी तरफ़ बैठे हुए हैं। उन्हें बुलाया और पूछाः—"तुम यहाँ क्यों आये हो?"

उन्होंने उत्तर दियाः—"हाकिमके हुक्मसे।"

मुन्सिफ साहबने कहाः—"तुम आरामसे बैठो। यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी। मैं यहाँ रोज व्याख्यानमें आता हूँ। हमेशा कुछ न कुछ नयापन व्याख्यानमें रहता है। इनका व्याख्यान श्रोताओंकी भलाईके लिए होता है। उनके मनमें किसी किसमका लालच नहीं है। लालच हो ही क्यों? जिन्होंने दुनियाको फानी—नाशमान समझकर इससे किनारा कर लिया है, जो पैसे टकेको कभी स्पर्श नहीं करते। जो अनेक घरोंमेंसे थोड़ी थोड़ी भिक्षा लेकर पेट भरते हैं, जो नंगे पैर फिरते हैं, जो कभी किसी सवारीपर नहीं चढ़ते, जो एक ठिकाने नहीं रहते, जिनके रहनेका कोई नियत स्थान नहीं, जो रमते राम हैं, जो कोई किसी गाँवमें या शहरमें ठहरनेको जगह दे देता है तो वहाँ ठहर जाते हैं, अन्यथा वृक्षके नीचे ही रात गुजार लेते हैं, जो भोजनकी तरह ही वस्त्र भी माँगकर ले आते हैं अर्थात् गृहस्थ अपने लिए कपड़ा लाता है उसमेंसे कुछ बच रहता है तो ले लेते हैं, उनके लिए लाया हुआ कपड़ा कभी नहीं लेते, जो कीमती या भड़कीला कपड़ा नहीं लेते, जो

अपने पास सिर्फ इतनासा सामान रखते हैं जितनेको वे उठाकर ले जा सकते हैं और जो कभी किसी गृहस्थसे अपनी चीजें नहीं उठवाते । इनका धर्म है,—किसी जीवको किसी भी दशामें कष्ट न पहुँचाना । हर समय उनकी भावना रहती है—

' शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवंतु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ '

इस भावनाको भानेवाला, इस मंत्रकी साधना करनेवाला क्या कभी किसीका विरोधी हो सकता है ? यद्यपि इसकी साधना कठिन है तथापि इन महात्माओंने इसको साधा है । "

पुलिसवाले बोलेः—" आप वजा फर्माते हैं । तीन राजसे हम बराबर यहाँ आरहे हैं । हमने इन साधुओंको आपके फर्मानेके अनुसार बिलकुल ही वेलाग और दूसरोंके हितका उपदेश देनेवाले ही देखा है । हमने पहले दिन जब आपको यहाँ बैठे देखा तभी समझ लिया था कि, यहाँ ऐसा वैसा उपदेश कभी न होता होगा । यदि होता तो आप यहाँ हरगिज न आते । इन महात्माओंके शब्दोंमें जादू है । हम इनके उपदेशपर मुग्ध हैं । हमें जाँचके वहाने ही इन महात्माओंका उपदेश सुननेको मिल जाता है । "

मुन्सिफ साहबने कहाः—" बहुत अच्छा करते हो । उपदेशके माफिक कुछ अमल भी किया करो । अमलके विना सुना न सुना एकसा है । "

जिस समय अच्छर मच्छरादिका दीक्षा महोत्सव हो रहा

था उस समय किसी ईर्षालुने सर्कारमें अर्जी दी कि,-जिन लड़कोंको दीक्षा दी जानेवाली है उनके माता पिताको इसकी विल्कुल खवर नहीं है। यह काम चुपके ही चुपके हो रहा है। इस लिए सरकार इसकी जाँच करे। दैवयोगसे वह दख्वास्त मुन्सिफ साहवके पास ही जाँचके लिए पहुँची। उन्होंने उस दख्वास्तको ईर्ष्याका परिणाम समझकर दफ्तर दाखिल करा दिया। उन्हें मालूम था कि, दीक्षामहोत्सव वड़ी धूमधामसे हो रहा है, रोज जुलूस निकलते हैं। सारा शहर इससे वाकिफ है। इतना ही क्यों अच्छर मच्छरके ताऊजी (पिताके वड़े भाई) जयपुरमें आये थे। वे अच्छर मच्छरकी जायदादका प्रवंध स्वयं करके उन्हें दीक्षा लेनेकी आज्ञा दे गये थे। मुन्सिफ साहव भी उस समय मौजूद थे; क्यों कि यह वात व्याख्यानके समय ही हुई थी। मुन्सिफ साहवने पासमें वैठकर दीक्षाकी सारी क्रियाएँ देखी थीं।

हमारे चरित्रनायकने जयपुरसे विहार किया तव वे दो तीन माइल तक साथमें गये थे। और भी सैकड़ों मनुष्य आपको पहुँचाने गये थे।

जिस समय जयपुरमें तीन भाइयोंकी दीक्षाकी तैयारियाँ हो रही थीं उस वक्त अजमेरनिवासी सेठ हीराचंदजी सचेती कुछ अन्य सधर्मी भाइयोंको साथ लेकर हमारे चरित्रनायकके चरणोंमें उपस्थित हुए और अर्ज करने लगे कि—" कृपानिधान हम आपकी खिदमतमें इस लिए हाजिर हुए हैं कि कृपाकर आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें।

"हम सब सेवक यह प्रार्थना करनेको आये हैं कि आप इन तीनों वैरागियोंको अजमेरमें दीक्षा दें। खास फायदा वहाँ यह होगा कि अजमेरमें स्थानकवासी भाइयोंने कॉन्फरन्सका जलसा कायम किया है। तारीख वही है जो दीक्षाकी है। कॉन्फरन्सके मौके पर हजारों स्त्री पुरुष वहाँ मौजूद होंगे इससे सैकड़ों गामोंमें घूमकर जो उपकार आप श्रीजी वर्षोंमें कर सकेंगे वह तीन दिनोंमें हो सकेगा।" सचेतीजीने यह भी अर्जकी कि उस मौकेपर हम मूर्तिपूजक संप्रदायकी कॉन्फरन्सका अधिवेशन कायम करनेकी योजना भी करना चाहते हैं, इस कार्यमें हमारे सर्व भाई मददगार हैं और अगर गुरु महाराज अजमेर पधारें तो ४०००० रु० तकका खर्च मैं अकेला करनेको तैयार हूँ।

हमारे चरित्रनायक इसकार्यमें बड़ा लाभ समझते थे मगर जयपुरके श्रीसंघको वचन दे चुके थे। जब जयपुरके श्री-संघको पूछा तो उसने कहाः—"अपने हाथमें आया हीरा कौन दूसरेको दे देता है।" अजमेरके श्रीसंघकी आशा अपूर्ण रह गई। दीक्षा जयपुरमें ही हुई।

जयपुरसे विहार कर आप अजमेर पधारे। बड़े उत्साह और आडंबरके साथ श्रावकोंने आपका नगरप्रवेश कराया। करीब दस रोजतक आप वहाँ विराजे और लोगोंको उपदेशा-मृतका पान कराते रहे।

अजमेरसे विहार करके आप नयेशहर (ब्यावर) पधारे

यहाँके लोगोंने अति उत्साहके साथ आपका स्वागत किया। वड़े भारी जूलूसके साथ लोग आपको उपाश्रयमें ले गये। आपके पधारनेकी खुशीमें लोगोंने वहाँ अठाई महोत्सव शुरू किया। सवेरे लोग व्याख्यान सुनते थे और दुपहरको पूजाका आनंद उठाते थे।

ब्यावरसे आप पिपलीगाँवमें पधारे। वहाँ स्थानकवासियों और मंदिर मार्गियोंके आपसमें फूट थी। आपके उपदेशसे वह मिट गई और दोनों मिलकर रहने लगे।

पिपलीगाँवसे आप मुँडावा होते हुए चंडावल पधारे। वहाँ दो दिनतक लोगोंको उपदेशामृत पिलाकर निहाल किया।

चंडावलसे आप सोजत पधारे। वहाँ पालीके धर्मात्मा सेठ तेजमलजी चाँदमलजी आदि भी आये थे। लोगोंने वड़े उत्साहसे आपका स्वागत किया और आपका उपदेशामृत पी अपनेको कृतकृत्य वनाया।

सोजतसे आप जाडण होते हुए पाली पधारे। वहाँसे गोल-वाड़में पंचतीर्थीकी यात्राके लिए पधारे। वरकाणाजी, नाडलाई, नाडोल, घाणेराव, सादड़ीकी यात्रा कर, मुँडारा, वाली, शिव-गंज, और सीरोही होते हुए और इन गाँवोंके लोगोंको धर्मा-मृत पिलाते हुए आप आवूजी पधारे। वरकाणाजीसे आचार्य श्रीविजयकमल सूरिजीके शिष्य श्रीलावण्यविजयजी भी आपके साथ हो गये थे। वे चार सालतक आपके साथ रहकर आपकी सेवा भक्ति करते रहे। आपने भी उन्हें, विद्या-दान देकर, विद्वानोंकी पंक्तिमें विठा दिया।

आबूसे विहार करके आप मढार पधारे। आपके लघु गुरु भ्राता मुनि मोतीविजयजी भी गुजरातकी तरफसे विहार करके यहीं आपकी सेवामें हाजिर हो गये।

मढारसे विहार करके सं० १९६६ की ज्येष्ठ शुक्ला २ के दिन आप पालनपुर पहुँचे। उमंगोंसे भरे श्रावकोंने आपका कल्पनातीत स्वागत किया। पालनपुरमें साधुओंका सामैया (जुलूस) यही सबसे पहला था, इस कारणसे भी लोगोंमें उत्साह अत्यधिक था।

नगरप्रवेश बड़ी धूमधामसे कराया। जुलूसमें हजारों नर नारी आये थे। करीब आधे माइलमें जुलूस था। स्त्रियाँ बधाईके गीत गाती थीं और पुरुष जैनधर्मकी जय, आत्मारामजी महाराजकी जय और मुनि वल्लभविजयजी महाराजकी जयके घोषसे आकाश मंडलको गुँजाते थे।

बड़ोदेके कोठारी जमनादास, खीमचंद भाई आदि लगभग पचास श्रावक आपको बड़ोदेमें चौमासा करनेकी विनती करनेके लिए आबूजी पहुँचे थे; मगर वे आबूजी पहुँचे उसके पहले ही आप दूसरे (अनादराके) रस्ते होकर नीचे उतर गये थे, इसलिए वे सभी आबूजीकी यात्रा करके प्रवेशमहोत्सवके समय पालनपुर आ पहुँचे थे।

होनी, भवितव्यता, पहलेहीसे कुछ न कुछ चिन्ह प्रकट कर देती है। पालनपुरके संघका ऐसा अपूर्व उत्साह और सामैया देखकर उनको संदेह हुआ कि संभवतः पालनपुरवाले महाराजका विहार कभी न होने देंगे।

शामको पालनपुरके कई श्रावक बड़ोदावालोंके डेरेपर पहुँचे और हाथ जोड़ कर कहने लगे,—" भाई साहब आप हमारी मदद कीजिए, जिससे हम महाराज साहबसे यहीं चौमासा करनेकी विनतीको स्वीकार करा सकें। महाराज साहबका यहाँ चौमासा होना बहुत जरूरी है। यहाँके संघका बड़ा उपकार होगा। आदि।"

बड़ोदावालोंका संदेह विश्वासमें बदल गया। उन्होंने सलाह की कि खीमचंदभाई आदि पाँच सात आदमी यहाँ रह जायँ, जो महाराज साहबको यहाँसे विहार कराके ही निकलें। दूसरे अभीसे चले जायँ।

दो दिनके बाद आपने मोतीविजयजी महाराजको वहाँसे विहार करवा दिया। कारण आपने मुनिमंडलके साथ यह स्थिर कर लिया था कि, सबका चौमासा एक ही साथ दादाके चरणोंमें—सिद्धाचलजीमें—हो। धीरे धीरे सभी वहाँ पहुँच जायँगे; मगर ज्ञानी महाराजने तो कुछ और ही देखा था।

चौथके दिन व्याख्यानमें, आपने पंचमीके दिन विहार करनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि, हम भोयणीमें गुरुदेवकी जयन्ती मनाना चाहते हैं। श्रावकोंने साग्रह वहीं की जयन्ती करनेकी विनती की। आपको वह स्वीकारनी पड़ी। श्रावकोंने कहा था आपके विराजनेसे अनेक उपकार होंगे। सो हुए।

करीब बीस बरससे पालनपुरके संघमें दो धड़े हो रहे

थे। पैंतीस घर एक तरफ थे और शेष दूसरी तरफ। झग-ड़ेको मिटानेके लिए अनेक मुनिराजोंने परिश्रम किया परन्तु कोई फल नहीं हुआ। होता तो तब जब झगड़ेकी काललब्धि समाप्त हो गई होती! अब वह समाप्त हो चुकी थी और उसका यश आपहीको बदा था।

आपने लोगोंको आपसी कलह मेटनेका उपदेश दिया। उपदेशको सुन उनके मन पसीजे। उन्होंने आपको ही न्याया-धीश नियत कर जो प्रतिज्ञापत्र लिख दिया, उसकी नकल यहाँ दी जाती है।

"परम पूज्य १०८ श्रीमहामुनिराज श्रीवल्लभविजयजी महाराज साहब। जोग लि० पालनपुर० तपगच्छके ओसवाल श्रीमाली महाजन समस्त। यहाँ हमारे आपसमें तकरार है। वह बाबत, निकाल करनेके लिए, हमने आप साहबको सौंपी है। इसलिए आप साहब, सबकी हकीकत सुनकर जो फैसला कर देंगे, वह हमको कबूल मंजूर है और उसके मुजिब हम वर्ताव करेंगे। उसमें कसूर नहीं करेंगे। मिति (गुजराती) सं १९६५ का ज्येष्ठ सुदी ४"

यह मूल गुजरातीका अनुवाद है। इसके नीचे करीब नव्वें पुरुषोंके हस्ताक्षर हैं।

आपने जो फैसला दिया उसकी नकल नीचे दी जाती है—

"नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः।

मैं स्वयं यह बताते अत्यंत प्रसन्न हूँ कि पालनपुरमें श्रीजिनेश्वर देवके मनोहर चैत्यमें प्राचीन श्रीजिन प्रतिमाओंका दर्शन भव्य जीवोंको बहुत आनंद देता है। ऐसी ऐसी अद्भुत प्राचीन प्रतिमाएँ यहाँ देखी हैं जैसी अन्य स्थानोंपर कठिनतासे मिल सकती हैं। श्रावक समुदाय भी धर्मका पूर्ण रागी और प्रतापी है। इतना होने पर भी ऐसा मालूम हुआ कि यहाँके मंदिरोंमें जितनी चाहिए उतनी देखरेख नहीं होती, इसलिए प्रसंगवश व्याख्यानमें इसके लिए कुछ कहा गया। जिससे श्रावकोंके हृदय भर आये। मगर उत्तर मिला कि, साहब इसमें कोई खास कारण है। पूछने पर विदित हुआ कि किसी साधारणसी वातपर आपसमें झगड़ा हो गया है। इसका अंत करनेके लिए सूचना दी गई। इससे सर्वानुमतसे यह वात प्रकट की गई की आप सारी वातोंसे वाकिफ होकर जैसी आज्ञा देंगे वैसा ही हम सब करनेके लिए तैयार हैं। इस विषयका पत्र लिख उस पर सबने हस्ताक्षर कर दिये। दोनों पक्षोंके आदमियोंसे जुदा जुदा सारी वातें जान लीं। इसके वाद जो कुछ मैंने उचित समझा वह वताता हूँ।

(१) यद्यपि कुछ वातोंमें कुछ व्यक्तियाँ अपराधी सावित होती हैं; परन्तु समयके फेरसे विरुद्ध धर्मवालोंको हँसी या आलोचनाका मौका न मिले इसी हेतुसे मैं उन्हें अपराधी वताना नहीं चाहता; तथापि पैंतीस घरवालोंने या दूसरे किसीने एकड़ामें (ऐक्यमें) भाग नहीं लिया वे एकड़ामें भाग लेने यानी एकड़ा भरनेके लिए वाध्य हैं।

(२) सभी एकड़ावाले तथा एकड़ासे विपरीत वर्तावंवाले तथा पांत्रीसी आदि सभी एकतासे, संपसे बिगड़ता हुआ धार्मिक काम सुधारनेके लिए वाध्य हैं; और आजके बाद जो कोई एकड़ासे विरुद्ध आचरण करेगा उसको जाति इकट्ठी हो जो मुनासिब ठहराव करेगी उसके अनुसार वर्तना पड़ेगा। अर्थात् इस विषयमें जातिको अख्तियार दिया जाता है कि जाति चाहे तो उसे जातिसे अलग कर दे और चाहे तो उससे उसकी योग्यताके अनुसार चाहे जिस खातेके लिए दंड ले, अथवा उसे माफ कर दे।

(३) एकड़ावालोंने, एकड़ासे विपरीत चलनेवालोंने अथवा पांत्रीसीने, किसीने भी मुझसे, अपनी किसी तरहके दुःखकी बात नहीं कही थी; मगर मैंने धर्मकी वृद्धिके बदले हानि होते देख उनसे कहा और मेरे कहनेसे सभीने सच्चे अन्तःकरणसे उद्योगकर मेरे कहनेके माफ़िक वर्ताव करनेकी मंजूरी दे मुझे ऐसे शुभ काममें भाग लेनेका सम्मान दिया है। मैं आशा करता हूँ कि तुम सभी पालनपुरके निवासी, मंदिर-आम्नायके सुश्रावक अपने वचनको पालनेके लिए और धर्मकी खातिर इस किये हुए ठहरावको सच्चे अंतःकरणसे मान दोगे और अबसे फिर उपर्युक्त विषयमें कभी भी द्वेष नहीं करनेके संबंधमें अपने मनमें प्रतिज्ञा धारण करोगे।

(४) आज स्वर्गवासी गुरु महाराज तपगच्छाचार्य श्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) महाराज साहबके

स्वर्गवासका दिन होनेसे आप श्रीसंघने महोत्सव प्रारंभ किया है। इसीके दर्मियानमें यह शुभ कार्य हुआ है, इसलिए तुम्हें अपार आनंद होगा और आजका दिन तुम्हारे लिए सुनहरी अक्षरोंमें लिखने योग्य साबित होगा। अस्तु, श्रीवीर संवत् २४३५ श्रीआत्म संवत १४ विक्रम संवत (गुजराती) १९६५ जेठ सुदी ८ गुरुवार।"

यह फैसला गुजराती भाषामें लिखा गया है और इसके अंतमें हमारे चरित्र नायककी सही है।

यह फैसला ऐसा हुआ कि इससे किसीको किसी तरहकी शिकायत न रही। बड़े आनंदके साथ इसका स्वागत किया गया और सभी पक्षवालोंने परस्परमें गले मिलकर इसको आचरणीय स्वरूप दे दिया। स्वर्गीय आत्मारामजी महाराजकी वह अवसान तिथि थी इस लिए उत्सव हो रहा था। इस फैसलेसे उत्सवमें दुगनी शोभा बढ़ गई। उस दिन जब आप शामको प्रतिक्रमण कर चुके तब श्रीसंघने वहीं चौमासा करनेकी अर्ज की। आपने पालीतानेमें चौमासा करनेका इरादा बताया। श्रीसंघ वहीं डटकरके बैठ गया कि जब तक आप चौमासा यहीं करनेकी स्वीकारता न देंगे हम यहाँ से न उठेंगे—

आये हैं तेरे दरपे तो कुछ करके हटेंगे।
या वस्ल्ही हो जायगी या मरके हटेंगे॥

आप इन्कार करते थे। श्रावक हाँ कहलानेके लिए डटे हुए थे। इसी 'हाँ' 'ना' में रात आधीसे भी ज्यादा बीत गई।

उस समय गोदड़शाह नामक एक भाग्यवान श्रावकने, आग्रह और भक्ति विकंपित कंठसे कहाः—

"महाराज साहब! आप कृपा किजिए और श्रीसंघकी विनती स्वीकार कर लीजिए। मेरा अन्तरात्मा कहता है कि, आपके यहाँ विराजनेसे अनेक उपकार होंगे। यदि आप चौमासा करना इसी वक्त स्वीकार कर लें तो मैं अपना मकान-जो इसी धर्मशालाके मैदानमें सामने दिखाई दे रहा है—देनेको तैयार हूँ।"

वहाँ बैठे हुए सभी श्रावकोंके शरीरमें मानों बिजली दौड़ गई। उन्होंने उच्चस्वरसे कहाः—"गुरु महाराज! आप इस प्रतिज्ञाको साधारण न समझिए। इस प्रतिज्ञाकी पूर्त्तिसे संघकी इज्जत बढ़ेगी और धर्मशाला वास्तविक धर्मशाला बन जायगी। इस मकानके बिना यह धर्मशाला एक कौड़ीके कामकी भी नहीं है। इस मकान के लिए मुकदमें हुए, संघ दस हजार देनेको तैयार हुआ और अन्तमें संघ बाहर कर देनेकी धमकी भी गोदड़शाहको दी गई; मगर इन्होंने एक भी बात न मानी। आज ये भाई गुरु महाराजके और आपके पुण्य प्रतापसे, बिना ही किसीकी प्रेरणाके उसी मकानको देनेके लिए तैयार हैं। आप ज्ञानी हैं लाभालाभको विचार लें। इस मकानका धर्मशालाके लिए मिलना मानों एक बहुत बड़े कामका सिद्ध होना है।"

गोदड़शाहकी उदारता और श्रावकोंका आग्रह देख, साथके

साधुओंकी सम्मति ले आपने पालनपुरहीमें चौमासा करनेकी सम्मति दे दी।

वह कौनसा उकूंदा[1] है जो वाँ[2] हो नहीं सकता ?

हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ?

श्रावकोंकी इच्छा पूर्ण हुई। वे जयजयकार करते हुए अपने अपने घर जाकर मीठी नींदमें सोये। आपने भी आराम किया।

सवेरे ही आपने मुनि श्रीमोतीविजयजीको एक पत्र दिया। उसमें पालनपुरका हाल दरज कर उन्हें वापिस आनेके लिए लिखा था। वे उस समय ऊँझामें थे। ऊँझाके श्रीसंघको ये समाचार मिले। उसने उनसे ऊँझामें ही चौमासा करनेकी विनती की। उन्होंने आपकी आज्ञा लानेके लिए कहा। इस पर वहाँके कुछ मुखिया पालनपुरमें आपके पास गये। यद्यपि आप चाहते थे कि, सभीका चौमासा साथ ही हो, मगर श्रीसंघका आग्रह देखकर आपको इजाजत देनी पड़ी।

खीमचंदभाई आदि वड़ोदेके जो सज्जन हमारे चरित्रनायकको विहार करानेके लिए ठहरे हुए थे, पालनपुरमें यह उत्साह और यह लाभ देख, वंदना कर चले गये।

चौमासा जब पालनपुरहीमें स्थिर हो गया तब आपने मुनि श्रीललितविजयजी महाराजको, विज्ञानविजयजी, विबुधविजयजी, तिलकविजयजी, विद्याविजयजी और विचारविज-

१ कठिन प्रश्न, गाँठ; २.-हल होना, खुलना,